उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

हल्द्वानी

MAJY-502

प्रथम सेमेस्टर

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन-01

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

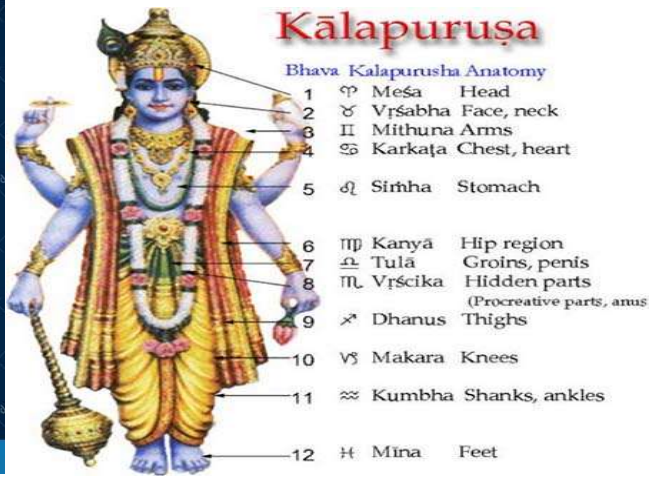

तीनपानी बाईपास रोड, ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं. – 05946 - 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड (फरवरी-2020)

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल- (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, LBS नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. पी.वी. सुब्रह्मण्यम एसोसिएट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, शिमला	**1**	**1, 2, 3**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**4,5**
प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी अध्यक्ष, वास्तुशास्त्र विभाग श्रीलालबहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली	**2**	**1,2,3,4**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष- 2020
प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
मुद्रक: -
ISBN NO : -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

MAJY-502 (प्रथम सेमेस्टर)

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन -01

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – सिद्धान्त स्कन्ध	**पृष्ठ - 2**
इकाई 1: सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय एवं महत्व	3 -20
इकाई 2: सूर्यादि ग्रहों के भगण	21-39
इकाई 3: ग्रहगति विवेचन	40-57
इकाई 4: भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि विवेचन	58-70
इकाई 5 : भूगोल स्वरूप विवेचन	71-82
द्वितीय खण्ड - काल विवेचन	**पृष्ठ - 83**
इकाई 1: काल स्वरूप	84-98
इकाई 2: अमूर्त्त काल विवेचन	99-115
इकाई 3: मूर्त्त काल विवेचन	116-125
इकाई 4: ग्रहकक्षा एवं भचक्र व्यवस्था	126-138

एम.ए. (ज्योतिष)

(MAJY-20)

प्रथम सेमेस्टर

द्वितीय पत्र

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन- 01

MAJY-502

खण्ड - 1

सिद्धान्त स्कन्ध

इकाई – 1 सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 सिद्धान्त का परिचय

1.3.1 गणित तथा गोल का सामंजस्य को सिद्धान्त कहते है

1.3.2 विभिन्न आचार्यों के मत में सिद्धान्त

1.3.2.1 बृहत्संहिता में

1.3.2.2 सिद्धान्तशिरोमणि में

1.3.2.3 सूर्यसिद्धान्त में

1.3.3 बोध प्रश्न

1.4 ग्रह साधन व कालसाधन में सिद्धान्त

1.4.1 समान विभाग

1.4.2 कालगणना

1.4.3 सिद्धान्त के तीन मुख्य परम्परा

1.4.3.1 आर्य परम्परा

1.4.3.2 ब्रह्मपरम्परा

1.4.3.3 सूर्यपरम्परा

1.4.4 बोध प्रश्न

1.5 सिद्धान्त ज्योतिष का महत्त्व

1.5.1 सिद्धान्त की विशेषता

1.5.2 गणित और गोल का अन्योन्याश्रयत्व

1.5.3 बोध प्रश्न

1.6 सारांश

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रथम सेमेस्टर के द्वितीय पत्र MAJY-502 की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय तथा उसके महत्त्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। समय व काल के बारे में अब तक अनेक प्रकार के विवरण प्राप्त कर चुके हैं। ज्योतिष के बारे में भी विभिन्न प्रकार की जानकारियों से परिचित हुए है। काल व समय स्थान के आधार पर परिवर्तित होते हैं। स्थान स्थान में दिशा के आधार पर काल अलग अलग होता है। अर्थात् एक ही समय में भिन्न भिन्न स्थानों का काल भिन्न भिन्न प्रकार से होता है।

उदाहरण के लिये भारत के ही दो स्थान लेते है। कोलकत्ता भारत के पूर्वीभाग में है जिसका रेखांश ८८^0/ २१$^{|}$पू तथा वड़ोदरा भारत के पश्चिमी भाग में है जिसका रेखांश ७३^0/ १०$^{|}$पू. है। अर्थात् वड़ोदरा कोलकत्ता से १५^0/ ११$^{|}$ पश्चिम में स्थित है।

अब इन दोनों स्थानों में दिशा भेद के कारण समय का अन्तर क्या होता है इसे यहाँ पर समझने का प्रयास करते है। जिस समय कोलकत्ता में सुबह के ६ बजते है ठीक उसी समय वड़ोदरा में सुबह के ५ बजते है। क्योंकि दोनों के बीच का १५^0/ ११$^{|}$ अन्तराल में ६० मिनट ४४ सेकंड काल का अन्तर है। अर्थात् एक ही समय में भारत के ही दो स्थानों में दिशा भेद के कारण इतना अन्तर पाया जाता है। यही स्थिति पूरे विश्व की है।

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य कार्य व उद्देश्य ही काल साधन है। काल साधन ग्रहों के अधार पर किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि काल के साधन से सम्बन्धित विभिन्न जानकारियां प्राप्त करने तथा काल साधन करने की विधाओं को जानने के लिये सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में जानना अत्यन्त आवश्यक है। इस इकाई में काल साधन के लिये आवश्यक उस सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय आप प्राप्त करेंगे।

काल साधन क्रम में प्राप्त होने वाले ग्रह गति स्थिति आदि का प्रयोग ज्योतिष के अन्य स्कन्धों में भी होता है। वे स्कन्ध है - होरा और संहिता स्कन्ध। आप जानते है कि होरा स्कन्ध के आधार पर फलादेश किया जाता है। तथा संहिता स्कन्ध के आधार पर समष्टिगत फलों का विचार किया जाता है। ये दोनों कार्य सिद्धान्त ज्योतिष के बिना नहीं हो सकते है। अर्थात् ज्योतिष का होरा स्कन्ध और संहिता स्कन्ध दोनों सिद्धान्त स्कन्ध पर ही निर्भर है। सिद्धान्त ज्योतिष का यह भी एक वैशिष्ट्य व महत्त्व है।

ज्योतिष शास्त्र का उद्भव ही काल साधन के लिये हुआ है। उस काल के बारे में जानकारी देने वाला तथा उस काल का साधन करने का विभिन्न प्रकार की विधाओं को समझाने वाला

ज्योतिष का भाग ही सिद्धान्त स्कन्ध के नाम से जाना जाता है। सिद्धान्त, संहिता, होरा नामक तीन स्कन्धों में विभक्त समस्त ज्योतिष शास्त्र का आधार भूत स्कन्ध यही कालविधायक स्कन्ध है। सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत प्राप्त विभिन्न जानकारियों का ही प्रयोग फलित ज्योतिष अर्थात् होरा स्कन्ध तथा मुहूर्त्त वास्तु आदि अनेक समाजोपयोगी विषयों का विश्लेषण इत्यादि संहिता स्कन्ध में प्रयुक्त होते है।

इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष की आवश्यकता तथा सिद्धान्त ज्योतिष के महत्त्व के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में तीन खण्डों में जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रथम खण्ड में सिद्धान्त का परिचय प्राप्त करेंगे। द्वितीय खण्ड में ग्रहों के आधार पर काल साधन के संक्षिप्त परिचय के साथ साथ सिद्धान्त ज्योतिष के योगदान एवं विभिन्न प्रकार के परम्पराओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। तीसरे खण्ड में सिद्धान्त ज्योतिष की आवश्यकता, महत्त्व व वैशिष्ट्य के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इकाई के अन्त में सारांश, शब्दावली, प्रश्न आदि होंगे जो इकाई में प्रस्तुत विषय पर पकड को और मजबूत करेंगे। बीच बीच में बोध प्रश्न प्रस्तुत है जो विषय के अवगमन को अधिक सरल करेंगे। अतः आप प्रत्येक विषय के उपरान्त प्रस्तुत बोध प्रश्नों को सम्यक् प्रकार से देखने के उपरान्त ही अध्ययन में आगे बढने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार से है –

- ज्योतिष के तीन स्कन्धों में अन्यतम सिद्धान्त स्कन्ध के बारे में सामान्य परिचय प्राप्त करना है।
- ग्रहों के आधार पर काल का साधन किस प्रकार से किया जाता है तथा उन ग्रहों के साधन में सिद्धान्त ज्योतिष की भूमिका के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त करना है।
- सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख भेदों, विचारधाराओं व परम्पराओं से सम्बन्धित सामान्य जानकारी प्राप्त करना है।
- अन्य स्कन्धों के लिये उपादेय सिद्धान्त ज्योतिष के वैशिष्ट्य के बारे में जानकारी प्राप्त करना है।
- निष्कर्ष के रूप में कहा जाय तो इस इकाई का मुख्य उद्देश्य काल साधन करने वाले ज्योतिष के एक महत्त्व पूर्ण अंग से परिचित होना और उसकी आवश्यकता व महत्त्व से सम्बन्धित जानकारियों को प्राप्त करना है।

1.3 सिद्धान्त का परिचय

अभिलक्षण के आधार पर यदि ज्योतिष शास्त्र का विभाजन किया जाय तो मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रायः अधिकांश आचार्य इस विभाजन से सहमत है। सूक्ष्म अभिलक्षणों को गिनती में लेने पर ज्योतिष का अनेक भागों में विभाजन करना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु ये सभी भाग उपरोक्त तीन मुख्य भागों में समाहित हो जाते है। उन भागों को अनेक स्थानों में स्कन्ध के नाम से व्यवहार किया गया है।

सिद्धान्त शब्द का संस्कृत वाङ्मय में अनेक अर्थ प्राप्त होते है। परिस्थितियों के आधार पर इसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। ज्योतिष एक प्रायोगिक विज्ञान है। अर्थात् इसमें समय, स्थान तथा व्यक्ति के अनुसार नियम परिवर्तित होते है। काल साधन के नियम भी परिवर्तन शील है। काल साधन के नियमों के साथ साथ परिवर्तन के नियमों को स्थिति के अनुसार प्रयुक्त करने का निर्देश सिद्धान्त देता है। अर्थात् सिद्धान्त विभिन्न नियमों का समाहार है और उन नियमों के प्रयोग करने पर प्राप्त होने वाला फल विलक्षणता को धारण करता है। वह फल स्थान दिशा और काल पर आधारित होता है। यदि संक्षेप में कहना है तो काल साधन हेतु प्रयुक्त प्रयोगों का नियामक है सिद्धान्त ज्योतिष।

सिद्धान्त के नाना प्रकार की परिभाषाओं में अन्यतम है " अन्ते सिद्धः" का सिद्धान्त। अर्थात् प्रयोगादि असकृत् व वारं वार क्रियाकलापों के अन्त में जो फल सिद्ध हुआ उसे भी सिद्धान्त कहा जा सकता है।

उलझन से सुलझने का मार्ग सिद्धान्त है। जैसे दो ग्राम भार वाली पिन (सूई) को पानी में
डालने पर डूब जाती है। किन्तु 400 टन लोहे का जहाज पानी में नहीं डूबता है। यदि सोचे कैसे सम्भव है तो साधारण रूप से असम्भव लगता है। वह जहाज किस कारण से नहीं डूबता है ? नही डूबने के लिये उसका निर्माण कैसे करना है? किन किन नियमों का पालन करना है? उसका लम्बाई चौडाई गहराई आदि का नाप क्या होना है? इन प्रश्नो का उत्तर जो मिलता है वहीं सिद्धान्त कहलाता है। कार्य क्यों हुआ? कैसे हुआ? होने के लिये क्या कारण है? इन प्रश्नो का निर्माण कर उनका उत्तर यदि सफल परीक्षण के साथ प्राप्त करते है तो उन उत्तरों के समूह को सिद्धान्त कह सकते है।

इसी प्रकार से ग्रहों की गति एवं स्थिति के आधार पर अनेक प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करके काल का साधन किया जाता है। इसी काल साधन विधि के सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रन्थकार विभिन्न मार्गों में समझाने का प्रयास किये है। अनेक प्रकार की युक्तियों के समूह को भी इस सन्दर्भ में सिद्धान्त कह सकते हैं।

सिद्धान्त के महत्त्व के सन्दर्भ में आचार्य भास्कर लिखते है -

यः सिद्धान्तमनन्तयुक्ति विततं नो वेत्ति....

इस वाक्य में सिद्धान्तं अनन्तयुक्ति विततं इस खण्ड पर ध्यान देने से उपरोक्त वाक्य स्पष्ट हो जाते है। मध्यम ग्रह को स्पष्ट ग्रह बनाने के लिये जितने उपायों की आवश्यकता होती है उन सभी उपायों के समूह को सिद्धान्त कहते हैं।

यः (जो) अनन्तयुक्तिविततं (अनन्त युक्तियों से युक्त) न वेत्ति (नहीं जानता है) वह दीवार पर बनाये गये राजा के चित्र के बराबर होता है। अर्थात् राजा का चित्र जैसे राजा नहीं हो सकता है उसी तरह जातक आदि जानकर भी सिद्धान्त की युक्तियों को नहीं जानने वाले की स्थिति होती है।

1.3.1 गणित तथा गोल के सामंजस्य को सिद्धान्त कहते हैं -

कालसाधन ग्रहों के आधार पर होता है। ग्रहों का साधन दो प्रकार से होता है। एक गणित से तथा दूसरा प्रत्यक्ष वेध से। गणित से ग्रह का साधन करने के लिये व्यक्त और अव्यक्त संज्ञाओं से विभक्त गणित का ज्ञान अपेक्षित है। वेधप्रक्रिया को अपनाने के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। गणित तथा गोल से एक ही फल यदि प्राप्त होता है तो उसे स्पष्ट कहते है। अत एव स्पष्टग्रहसाधन में गणितागत तथा दृगुपलब्ध दोनों ग्रहों का सामंजस्य अपेक्षित है। इसी सामंजस्य को सिद्ध करने के लिये जिन उपायों का वर्णन किया गया है उन सभी को समष्टि रूप से 'सिद्धान्त' कहते है। अर्थात् सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित ग्रन्थों में गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता साधन के लिये अनेक प्रकार के उपाय बताये गये है।

गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता को ही 'स्पष्ट ग्रह' कहते है तथा स्पष्ट ग्रहों से ही अभीष्ट फल की सिद्धि होती है। इस सन्दर्भ में कुछ आचार्यों के वाक्य यहां प्रस्तुत हैं जो ग्रहस्पष्टीकरण के लिये उत्पन्न सिद्धान्त ज्योतिष के आन्तर्य को और स्पष्ट कर सकते हैं।

आचार्य भास्कर के अनुसार -

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खैटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां **स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्द्या**।।

सिद्धान्त शिरोमणि., गणिताध्याय, स्पष्टाधिकार, श्लो.१

यात्रा विवाह जातक आदि में स्पष्ट ग्रहों से ही स्पष्ट फल प्राप्त होता है। अतः स्पष्टग्रहों का ही प्रयोग अभीष्ट है। उसी सन्दर्भ में आचार्य कहते है **स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्द्या**। या दृक् गणितयोः ऐक्यकृत् सा स्फुटक्रिया। अर्थात् जो प्रक्रिया दृक् तथा गणित से प्राप्त फलों का एकीकरण का मार्ग बताती है वही स्पष्टीकरण प्रक्रिया है। इसी वाक्य से स्पष्ट होता है कि ग्रह साधन गणित और गोल के सामंजस्य से उत्पन्न होता है।

सूर्यसिद्धान्त में –

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः ।
प्रयान्ति **तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्**।।

सूर्यसिद्धान्त नामक सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थ में ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के सन्दर्भ में आचार्य द्वारा प्रस्तुत यह वाक्य ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के महत्त्व को तथा सिद्धान्त ज्योतिष के उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है। तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् । तत् स्फुटीकरणं आदरात् प्रवक्ष्यामि। मै उस स्पष्टीकरण को आदर से बताता हूं। किस स्पष्टीकरण को? यथा दृक्तुल्यतां
ग्रहाः प्रयान्ति। जैसे ग्रह दृक्तुल्यता को प्राप्त करते है?

सूर्य सिद्धान्त के इन वचनों से भी गणित तथा गोल का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है तथा उसी सम्बन्ध के आधार पर गणितागत ग्रहों को दृक्तुल्य ग्रह बनाने की विधि भी बताई गई है। सूक्ष्मरूप से बताया जाय तो इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में मार्गदर्शन करने का कार्य ही सिद्धान्त ज्योतिष करता है।

1.3.2 विभिन्न आचार्यों के मत में सिद्धान्त

ज्योतिष शास्त्र के अनेक आचार्य हैं। इस शास्त्र के मुख्य रूप से अट्ठारह प्रवर्तक माने जाते हैं। उन सभी प्रवर्तक आचार्यों की तीनों स्कन्धों में कृतियाँ प्राप्त नहीं होती हैं। उन आचार्यों में तथा उनके अनन्तर काल में जिन जिन आचार्यों ने सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में अथवा ज्योतिष के स्कन्धों के बारे में चर्चा की है उन आचार्यों का तथा उनके द्वारा प्रस्तुत चर्चा की संक्षेप प्रस्तुति यहा की जा रही है। इस से सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित जानकारी और सुदृढ हो सकती है।

आचार्यों में कुछ के नाम इस प्रकार से है। नारद, वसिष्ठ, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट, भास्कराचार्य, लल्ल, श्रीपति, मुञ्जाल आदि। सबसे पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ। ब्रह्मा ने नारद को तथा नारद ने शौनक को एवं शौनक ने आगे की श्रेणियों को यह ज्ञान प्रदान किया। प्रवर्तकों की श्रेणी में महर्षि नारद और वसिष्ठ आदि आते हैं। आचार्य आर्यभट को प्रथम पौरुष ज्योतिष ग्रन्थकार कहते हैं। अर्थात् महर्षियों की श्रेणी के बाद जो मानव मात्र ज्योतिष शास्त्र में ग्रन्थ रचना करने का प्रयास किया उनमें पप्रथम व्यक्ति आचार्य आर्यभट है। आर्यभट के ही समय के आचार्य रहे आचार्य वराह मिहिर। इस नाम से सभी विदित ही हैं। इनके कुछ समय के बाद क्रमशः लल्ल मुञ्जाल, श्रीपति, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य जैसे आचार्य उत्पन्न हुए जो सिद्धान्त ज्योतिष को नई दशा और दिशा प्रदान किये।

उन आचार्यों में से तथा उन ग्रन्थों में से सिद्धान्त को स्पष्ट करने वाली कुछ उक्तियां यहाँ प्रस्तुत हैं। प्रदत्त सन्दर्भ प्रायः सभी आचार्यों के मत को दर्शाते हैं।

1.3.2.1 बृहत्संहिता में -

ज्योतिश्शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता।
स्कन्धेस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होरान्योङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोपरः।।

अनेक प्रकार के विषयों से संवलित ज्योतिष शास्त्र को तीन मुख्य स्कन्धों में विभक्त किये है। उनका इस प्रकार से विभक्त करने का आधार उनकी उपयोगिता ही है। निरवशेष जहाँ पर उन विषयों का वर्णन किया जाता है उसे संहिता स्कन्ध कहते है। जिस स्कन्ध में गणित के आधार पर ग्रहों का साधन किया जाता है उसे तन्त्र अथवा सिद्धान्त कहते है। अंग विनिश्चय अर्थात् अंग यानी लग्न का विनिश्चय यानी निर्णय जहां होता है उसे होरा कहते है।

इस श्लोक में आचार्य स्पष्ट कर चुके है कि जहां पर गणित के आधार पर ग्रहों का साधन होता है उसे सिद्धान्त या तन्त्र कहते है। गणित के आधार पर ग्रहों का साधन अनेक प्रकार के युक्तियों के आधार पर होता है। गणित का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ पर लक्ष्य सिद्धि हेतु एक से अधिक मार्ग होते है तथा ये सभी युक्ति अथवा तर्क के अधीन होते है। अतः स्पष्ट रूप से अनेक प्रकार के युक्तियों का प्रयोग जहां किया जाता है उसे सिद्धान्त कहा जाता है।

1.3.2.2 सिद्धान्तशिरोमणि में -

सिद्धान्तशिरोमणि में वर्णित सिद्धान्त का लक्षण बहुविस्तृत तथा सरल है। इस वर्णन में सिद्धान्त ज्योतिष का बिन्दुशः उद्धरण प्राप्त होता है।

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तस्स उदाहृतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।।

जिस स्कन्ध में -

- काल का आरम्भ त्रुटि से तथा अन्त प्रलय से होता है। अर्थात् काल का अत्यन्त सूक्ष्मविभाग त्रुटि है तथा अत्यन्त विशालतम इकाई की समाप्ति प्रलय से होती है। प्रारम्भिक अवयव से अन्तिम अवयव तक काल की कलना पद्धति जहाँ वर्णित है तथा जहाँ पर उस प्रकार के काल का साधन करने की विधि बतायी गयी हो।
  (त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना)

- ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र और आर्क्ष नामक नवविध कालमानों का वर्णन जहाँ पर किया गया हो।
  (मानप्रभेदः)
- द्युसदां अर्थात् आकाश में वास करने वाले ग्रहों का चार (गति) जहाँ बताया गया हो।
  (चारश्च द्युसदां)
- दो प्रकार के गणित का जहाँ विशद वर्णन हो।
  (द्विधा च गणितं)
- उत्तर सहित प्रश्न जहाँ पर हो।
  (प्रश्नास्तथा सोत्तराः)
- भूमि के अभिप्राय से ग्रहों की स्थिति जहाँ पर वर्णित हो।
  (भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं)
- यन्त्रों का वर्णन किया गया हो।
  (यन्त्रादि यत्रोच्यते)

ज्योतिष के उस भाग को गणित प्रबन्ध में बुद्धिमानों ने सिद्धान्त नामक संज्ञा दी। (सिद्धान्तस्स उदाहृतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः - सः गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः सिद्धान्त इति उदाहृतः)

1.3.2.3 सूर्यसिद्धान्त में -

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

अपनी अपनी कक्षाओं की विलक्षणता के कारण आठ प्रकार की गति के साथ राशि चक्र में चलने वाले ग्रह जिस तरीके से दृक्तुल्यता को प्राप्त करते हैं उस स्फुटीकरण नामक प्रक्रिया को मै (सूर्यांशपुरुष) बताता हूँ।

ग्रह अपने कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की गतियों से भ्रमण करते हैं। ग्रह गति के वर्णन से सम्बन्धित पाठ में ग्रह गति का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त करेंगे। सामान्य जानकारी के लिये ग्रहों की आठ प्रकार की गतियों के नाम यहाँ पर उल्लिखित है। वैसे तो उनका नाम ही उनके लक्षणों को प्रतिबिम्बित कराने में पर्याप्त है।

आठ प्रकार की ग्रह गति -

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।

तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः।।

वक्रा, अतिवक्रा, विकला , मन्दा, मन्दतरा, शीघ्रा, शीघ्रतरा, समा ये ग्रह की आठ प्रकार की गतियाँ हैं।

1.3.3 बोध प्रश्न

1. मध्यम और दृगुपलब्ध ग्रह एक होने पर उसको किस नाम से जाना जाता है?
2. दृगुपलब्ध ग्रह किसे कहते है?
3. प्रथम पौरुष ग्रन्थकार के रूप में किसे जाना जाता है?
4. बृहत्संहिता में सिद्धान्त के लिये किस नाम का उल्लेख है?
5. " दृग्गणितैक्यकृत् " का क्या अर्थ है?

1.4 ग्रह साधन व कालसाधन में सिद्धान्त

सिद्धान्त स्कन्ध का मुख्योद्देश्य काल का साधन है। काल के साधन हेतु ग्रहों का साधन किया जाता है। ग्रहों के साधन से तात्पर्य है भूकेन्द्राभिप्रायिक ग्रह स्थिति। अर्थात् भूमि के दृष्टि कोण में चारों ओर परिकल्पित क्षेत्र व राशिचक्र में ग्रह की कोणीय स्थिति को ग्रह स्थिति कहते हैं तथा उसी स्थिति के आधार पर समय का साधन किया जाता है।

सिद्धान्त ज्योतिष मुख्य रूप से काल साधन करने के लिये ग्रहों का साधन करता है। इस बात को और सूक्ष्मता के साथ जानने के लिये एक जिज्ञासा को शान्त करना आवश्यक है। वह जिज्ञासा है " काल साधन ग्रहों की स्थिति के आधार पर कैसे किया जाता है? "

काल स्थान सापेक्ष व व्यक्ति सापेक्ष होता है। यह बहुत गम्भीर विषय लगता है। सिद्धान्त ज्योतिष को समझने के लिये इस गम्भीर विषय को सरलता से समझने का प्रयास करना आवश्यक है। एक पंक्ति में भोजन करने चार लोग बैठे है। पंक्ति में पहला व्यक्ति भोजन 15 मिनट के समय में, दूसरा 20 मिनट में, तीसरा 40 मिनट में तथा चौथा 60 मिनट में पूरा करता हैं। इसको इस तरीके से दोबारा पढने का कोशिश कीजिये। भोजन पूरा करने में पहले व्यक्ति को 15 मिनट का , दूसरे को 20 का , तीसरे को 40 का तथा चौथे को 60 मिनट का समय लगा। यहाँ भोजन का पूरा करना व्यक्ति सापेक्ष रहा।

इसी प्रकार से सूरज प्रत्येक स्थान में अलग अलग उदय होता है। प्रत्येक स्थान में उदय तथा अस्त का अन्तराल अलग अलग होता है। जब एक स्थान में सूर्योदय और अस्त के बीच का समय लगभग 12 घंटे का है उसी समय दूसरे स्थान में वह समय छ महीने का भी हो सकता है। कुछ स्थानों

में 60 दिन का भी हो सकता है और कुछ स्थानों में 60 घटी का भी हो सकता है। सूरज तो वही है। उसकी गति भी सब के लिये बराबर है। किन्तु गोलाकार पृथ्वी में अन्य पिण्डों के भ्रमण के कारण उत्पन्न होने वाली परिस्थिति अलग अलग है।

सिद्धान्त स्कन्ध इसी विलक्षणता को अनेक माध्यमों से समझाने का प्रयास करता है। अनेक प्रकार से एक ही काल का साधन बताये जाने के पीछे सत्यापन विधि मुख्य कारक है। एक से प्राप्त काल का सत्यापन दूसरे विधान से प्राप्त कालखण्ड से होता है।

1.4.1 समान विभाग

पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्त की कल्पना काल साधन हेतु की गई है उसको क्षेत्र कहते है। कल्पना शब्द का प्रयोग शास्त्र के लिये समस्यापूर्ण नहीं है। वास्तव में चारों और राशि चक्र में दिखने वाली राशियाँ तारों के समूह के कारण उत्पन्न खगोलीय दृश्य है। इनका वर्णन प्राच्य (पूरब के देशों) में और पाश्चात्य (पश्चिमी देशों) में अनेक प्रकार से किया गया है। अनेक वर्णनों में मतभेद भी है। अतः राशिचक्र को व समय साधन हेतु निर्णीत वृत्ताकार स्थान को कल्पना कहना अनुचित नहीं है।

इस क्षेत्र को कालविभागों के अनुरूप विभक्त किया गया है। वे विभाजन इस प्रकार से है-

क्षेत्र विभाग	काल विभाग
राशिचक्र (360 अंश)	वर्ष (360 दिन)
राशि (बारहवाँ भाग)	मास (बारहवाँ भाग)
अंश (राशि का तीसवाँ भाग)	दिन (मास का तीसवाँ भाग)
कला (अंश का साठवाँ भाग)	घटी (दिन का साठवाँ हिस्सा)

इन विभागों में ग्रहों की गति के आधार पर काल के विभाग कलित होते है। अर्थात् क्षेत्र वा राशिचक्र में ग्रहों की गति काल के विभिन्न घटकों की कलना (गणना) करने में सहयोग करते है।

1.4.2 कालगणना

सिद्धान्त की परिभाषा के सन्दर्भ में ९ प्रकार के कालमानों की चर्चा की गई। उन कालमानों को और सूक्ष्म रूप से समझने की कोशिश करने पर ग्रहों के आधार पर कालगणना करने का तात्पर्य भी समझ में आ जाता है।

सूर्य को राशिचक्र का पूरा भ्रमण करने के लिये एक वर्ष का समय लगता है। क्षेत्र तथा काल के समान विभागों की बात को यहाँ एक बार स्मरण करना है। क्षेत्र विभाग में सबसे बडा विभाग राशि चक्र है। उसके बराबर का काल विभाग है वर्ष। सूर्य को राशि चक्र में भ्रमण करने के लिये व सूर्य को राशि चक्र का एक चक्कर पूरा करने के लिये जो समय लगता है वह काल विभाग के सबसे

बडे अवयव (हिस्सा) वर्ष के बराबर है। उसे सौर वर्ष कहते है। सौर वर्ष का बारहवाँ भाग सौरमास कहलाता है। अर्थात् इस समय में सूर्य एक राशि का भोग करता है। सौरमास का तीसवा भाग एक सौर दिन कहलाता है।

इसी प्रकार से अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में भी विचार करना है। सूर्य और चन्द्रमा की युति को अमावास्या कहते है। सूर्य और चन्द्रमा की यह युति मीन राशि में होने के बाद पुनः मीन राशि में होने तक एक चान्द्र वर्ष होता है। मीन राशि में संगम के बाद प्रत्येक राशि में सूर्य और चन्द्रमा की प्रत्येक युति एक एक चान्द्रमास को दर्शाती है। सूर्य से आगे बढकर अधिक गतिमान चन्द्रमा लगभग २९ दिनों के अन्तराल में पुनः सूर्य को प्राप्त कर लेता है। चन्द्रमा का गति विलक्षण होने के कारण यहाँ पर सूर्य और चन्द्र के 360 अंशों के अन्तर को तीस भागों में विभक्त कर चान्द्रदिनों का व्यवहार किया जाता है। 360 को तीस से भाग देने पर 12 अंश प्राप्त होते है। सूर्य चन्द्रमा के प्रत्येक बारह अंश के अन्तराल को तिथि कहते है तथा तिथि को ही
चान्द्र दिन कहते है।

इसी प्रकार से ग्रहों की गति के आधार पर कालावयवों की गणना करने की प्रथा सिद्धान्त ज्योतिष के रूप में अनादि काल से प्रचलित है। सौरवर्ष की भांति गौरववर्ष आदि भी विचारणीय है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि काल साधन करने के लिये तथा काल के विविध अवयवों का अनुमान लगाने के लिये ग्रहों का सहारा लिया जाता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य आर्यभट की उक्ति स्मरणीय है -

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे

काल अनादि और अनन्त है तथा उस काल का ग्रहों और राशियों के आधार पर क्षेत्र में अनुमान लगाया जाता है।

1.4.3 सिद्धान्त की तीन मुख्य परम्परा

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य काल साधन ही है। काल का साधन ग्रहों के आधार पर क्षेत्र (राशि चक्र) में किया जाता है। कालक्रम में भारत में कालगणना की तीन मुख्य परम्परा उत्पन्न हुये। उन तीन परम्पराओं का नाम है आर्य, सूर्य तथा ब्राह्म। आर्यभट के सिद्धान्त के अनुसार काल गणना करने वालों को आर्यसिद्धान्त के अनुयायी, सूर्य सिद्धान्त के अनुसरण करने वालों को सूर्यानुयायी तथा ब्रह्मसिद्धान्त का अनुसरण करने वालों को ब्रह्मसिद्धान्तानुयायी कहते हैं।

1.4.3.1 आर्य परम्परा

आर्यभट की एक मात्र कृति आर्यभटीयम् नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ केवल सिद्धान्त

ज्योतिष के ही विषयों का वर्णन करता है। इसमें आर्यभट काल को अनादि और अनन्त मानते है तथा उपदेश देते है कि काल का अनुमान क्षेत्र (राशिचक्र) में ग्रह और राशियों के आधार पर लगाया जाता है।

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे

अपने मंगलाचरण में आर्यभट लिखते हैं -

आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलं च।

अर्थात् आर्यभट गणित कालक्रिया और गोल नामक तीन विषयों को बता रहें हैं।

गणित काल साधन का मूलाधार है। गणित के ज्ञान के बिना काल गणना की नहीं जा सकती है। ज्ञानियों का एक पक्ष का मानना है कि बीजगणित के आविष्कारक आर्यभट ही हैं। अपने ग्रन्थ के गणित पाद में आर्यभट अनेक प्रकार के गणितीय विषयों का उल्लेख किये हैं जो उनके पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों में देखने को नहीं मिलता है। उनमें से कुछ है व्यास और परिधि का सम्बन्ध, दशमलवपद्धति, दशोत्तरसंख्यामान आदि। शून्य के भी आविष्कारक के रूप में आर्यभट आजके विद्वानों में प्रसिद्ध है।

अन्य सिद्धान्तों से आर्यभट का सिद्धान्त मुख्य रूप से मन्वन्तर प्रमाण में मतभेद रखता है। अन्य सिद्धान्तों में एक मनु का अन्तर 71 महायुग का है वहीं आर्यभट मनु को 72 महायुग का मानते है। इसके अतिरिक्त अनेक सिद्धान्त है जो आर्यभट के सिद्धान्त में देखने को नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिये अयनांश विचार को लिया जा सकता है। आज प्रबल विवादांश के रूप में प्रचलित अयनांश का किसी भी रूप में वर्णन आचार्य आर्यभट नहीं किये हैं।

आर्यभट के समय के पहले ही ज्योतिष के तीनों स्कन्धों का प्रचार प्रसार था। किन्तु आर्यभट के द्वारा कहीं भी फलित ज्योतिष आदि का विचार नहीं किया गया। अपनी कृति में आर्यभट लिखते हैं कि वे सत् और असत् ज्ञान से युक्त समुद्र से सत् का ग्रहण कर वर्तमान सिद्धान्त बनायें हैं। इससे प्रतीत होता है कि आर्यभट फलादेश आदि विधाओं का विरोध करते हैं।

1.4.3.2 ब्रह्मपरम्परा

ब्रह्मसिद्धान्त का मूल विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बताया जाता है। प्रवर्तकों के वर्णन के समय में भी आचार्य लोग वर्णन करते है कि सब से पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ तथा ब्रह्मा ने इस विद्या को आगे के लोगों को प्रदान किया। ब्रह्म सिद्धान्त की मुख्य विशेषता है सृष्टि और कल्प के मध्य में अन्तर को नहीं मानना।

अर्थात् ब्रह्मसिद्धान्त में कल्पारम्भ ही सृष्ट्यारम्भ भी है। सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है कि

कल्पारम्भ के बाद ब्रह्मा को सृष्टि करने के लिये कुछ समय लगा। किन्तु इस बात को ब्रह्मसिद्धान्त स्वीकार नहीं करता है। ब्रह्म सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त का निर्माण किया तथा ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त काल क्रम में सत्यदूर होने के कारण आचार्य भास्कर कुछ संशोधन तथा कुछ नये सिद्धान्तों के साथ सिद्धान्तशिरोमणि का निर्माण किया।

1.4.3.3 सूर्यपरम्परा

सूर्यसिद्धान्त का अनुपालन ग्रह तथा काल साधन आदि में जो करते है उनकी परम्परा सूर्यपरम्परा कहलाती है। सूर्यसिद्धान्त के नाम से भारतीय ज्योतिष में अनेक ग्रन्थ प्रचलन में रहे। आचार्य वराह मिहिर के द्वारा संगृहीत एक सूर्यसिद्धान्त है। भटोत्पल के द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त सूर्यसिद्धान्त के अंश किसी दूसरे सूर्यसिद्धान्त के हैं। वर्तमान में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त उपरोक्त दोनों से भी भिन्न है। तथा अन्य आचार्यों की व्याख्याओं में भी सूर्यसिद्धान्त का प्रसंग है जो यहां पर प्रस्तुत तीनों सूर्यसिद्धान्तों से भिन्न माने जाते हैं। अतः सूर्यसिद्धान्त के नाम से प्रचलित होने वाले सिद्धान्त तीन से अधिक माने जाते हैं।

सूर्यांश पुरुष के द्वारा मयासुर को प्रबोधित सिद्धान्त ही सूर्यसिद्धान्त के नाम से वर्तमान में प्रसिद्ध है तथा वर्तमान में निर्मित अधिकांश पंचांग सूर्य सिद्धान्त का ही अनुसरण करते हैं।

1.4.4 बोध प्रश्न

1. क्षेत्र किसे कहते है?
2. सौर वर्ष किसे कहते है?
3. सिद्धान्त ज्योतिष में प्रमुखतः कितनी परम्परायें हैं?
4. काल को अनादि और अनन्त कौन मानते है?
5. आर्यभट ने किन तीन विषयों का उल्लेख आर्यभटीय में की हैं?

1.5 सिद्धान्त ज्योतिष का महत्त्व

गणित कालक्रिया और गोल का सामंजस्य स्थापित करना ही सिद्धान्त ज्योतिष की मुख्य प्रवृत्ति है। ये तीनों विषय आपस में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को रखते है। अर्थात् ये तीनों की युगपत् (एक साथ) स्थिति हो सकती है तथा अलग अलग इनका अस्तित्व नहीं है। काल गणित तथा गोल पर आश्रित है।

ग्रहों की स्थिति गति आदि विषय केवल काल साधन में ही नहीं बल्कि ज्योतिष के सिद्धान्त के अतिरिक्त स्कन्धों के लिये भी महत्त्वपूर्ण है। फलादेश हेतु स्पष्टग्रहों की आवश्यकता होती है तथा ग्रहों के चार (गति) के आधार पर प्राकृतिक आपदाओं आदि का ज्ञान किया जाता है।

1.5.1 सिद्धान्त ज्योतिष की विशेषता

सिद्धान्त के निर्वचन से सम्बन्धित जानकारी इस इकाई के प्रारम्भ में प्राप्त किये है। सिद्धान्त का कोई एक वाक्य में अथवा एक दृष्टि में निर्वचन नहीं हो सकता है। अर्थात् काल साधन के तत्त्व को अवगत कराने की प्रक्रिया ही सिद्धान्त कहलाता है। कालतत्त्व को जानने के लिये अनेक अवयव, विषय व विभागों का परिचय प्राप्त करना होता है इसकी जानकारी इकाई के अब तक वर्णित विषय से प्राप्त होती है।

इसी सन्दर्भ में अनेक प्रकार के उदाहरणों तथा उपमानों के साथ गोल के अभाव में गणित की स्थिति का वर्णन किये है आचार्य भास्कर जो सिद्धान्त के वैशिष्ट्य को अभिवर्णित करते है।

जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिश्शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः।।

जातक (होरा) और संहिता स्कन्धों को जानकर भी जो अनेक प्रकार की युक्तियों से युक्त सिद्धान्त को नहीं जानता है वह दीवार पर खींचे गये राजा के चित्र के समान तथा लकडी के बनाये गये सिंह जैसे ज्योतिशास्त्र के विचारों से सम्बन्धित प्रश्नों में अकिंचित्कर अर्थात् कुछ भी नहीं कर पाने वाला होगा।

अर्थात् दीवार पर चित्रित राजा जिस प्रकार से शासन नहीं कर सकता, लकडी का बना सिंह जिस प्रकार से दहाड नहीं सकता उसी तरह जो सिद्धान्त नहीं जानता है वह ज्योतिषशास्त्र के विचारों से युक्त प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है।

ज्योतिषशास्त्रज्ञ बनने के लिये सिद्धान्त ज्ञान अनिवार्य है।

गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतच्यूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्नभात्युच्चकै-
र्ज्योतिःशास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगुः।।

राजा की सेना अश्वों से युक्त होने पर भी गरजने वाले हाथियों के अभाव में जिस प्रकार से

प्रभाव हीन होती है, आम के पेड से रहित उद्यान जैसे प्रभाव हीन होता है, जिस प्रकार राह से रहित नदी की स्थिति होती है, पति से दूर रह रही स्त्री का सौन्दर्य जिस तरह किसी काम का नहीं होता है उसी तरह सिद्धान्त ज्योतिष के ज्ञान से रहित ज्योतिषशास्त्रज्ञ की स्थिति होती है।

1.5.2 गणित और गोल का अन्योन्याश्रयत्व

मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह की एकता साधन ही ग्रह स्पष्टीकरण है। मध्यम ग्रह साधन हेतु गणित का ज्ञान अपेक्षित है। गणित दो प्रकार का होता है। ग्रह की दृगुपलब्धि के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। किन्तु गणित के अभाव में गोल का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। अर्थात् गणित और गोल दोनों अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रखते है। अर्थात् गणित के बिना गोल तथा गोल के बिना गणित का ज्ञान नहीं हो सकता है।

पूर्व में ही इस विषय की जानकारी हुई है कि ग्रहस्पष्टीकरण के माध्यम से काल साधन करना ही सिद्धान्त कहलाता है। अथवा ग्रहसाधन के आधार पर काल साधन करना ही सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य है। इन दोनों का महत्त्व तथा उन दोनों की अविकल्प अध्ययन की आवश्यकता को आचार्य भास्कर इस प्रकार वर्णित किये है -

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र।।

सभी रसों से युक्त भोजन घी (आज्य) के बिना जिस तरह जमता नहीं, राजा से रहित राज्य जिस तरह से अच्छा नहीं लगता है, अच्छे वक्ता से रहित सभा जिस तरह अच्छी नहीं लगती है उसी तरह गोल की जानकारी से रहित गणितज्ञ की स्थिति होती है। अर्थात् गोलज्ञान के बिना कालसाधन में गणित का कोई उपयोग नहीं।

ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयं
ते गोलाश्रणियोन्तरेण गणितं गोलोपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति।।

भास्कराचार्य की इस उक्ति में ज्योतिष शास्त्र के अनेक घटकों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्पष्ट रूप से वर्णित है। इस उक्ति में सिद्धान्त का लक्षण भी देखने को मिलता है साथ ही ज्योतिष के विभिन्न अंगों का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है।

ज्योतिष शास्त्र का मुख्य उद्देश्य आदेश है। वह आदेश काल का भी हो सकता है तथा फल का भी। फल से सम्बन्धित जो फल होता है उसका आधार लग्न ही होता है। लग्न का साधन स्पष्ट

ग्रहों के बिना नहीं हो सकता है। स्पष्ट ग्रह गोल को आश्रित करते है। अर्थात् गोल के ज्ञान के अभाव में ग्रह का साधन नहीं किया जा सकता है। गोल का ज्ञान गणित के अभाव में नहीं हो सकता है। अतः जो गणित नहीं जानता है वह गोल का ज्ञाता नहीं हो सकता है। इसी उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि ज्योतिष के सभी विषय एक दूसरे पर आश्रित है तथा अधिकांश आधार विषय सिद्धान्त ज्योतिष के ही है।

1.5.3 बोध प्रश्न

1. ज्योतिष का फल मूल रूप से किसे आश्रित करता है?
2. गौलाश्रयी कौन हैं?
3. गोलानभिज्ञ गणक किसके समान है?
4. स्फुटक्रिया किसे कहते है?
5. दृक्तुल्य मध्यम ग्रह को किस नाम से जाना जाता है?

1.6 सारांश

इस इकाई की अध्ययन से आप जान चुके है कि स्थान भेद के अनुसार काल का व्यवहार होता है। ज्योतिष के स्कन्धों में जिस स्कन्ध के आधार पर काल का साधन होता है उसे सिद्धान्त स्कन्ध कहते है। संक्षिप्त में आप जान चुके है कि काल साधन के लिये ग्रहों का साधन करना होता है। ग्रहों के साधन करने के लिये गणित और गोल दोनों का ज्ञान अपेक्षित है। गणित तथा गोल के आधार पर प्राप्त ग्रह को स्पष्ट ग्रह कहते है।

आप यह भी जान चुके है कि काल के जो अवयव है उन्ही के बराबर में क्षेत्र अर्थात् राशि चक्र का भी विभाजन किया गया है। सिद्धान्त ज्योतिष में अनेक परम्परायें प्रचलन में हैं। आप यह भी जान चुके है कि आर्य सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्त तथा ब्रह्म सिद्धान्त के नाम से सिद्धान्त का तीन विधा प्रचलन में है।

इकाई के अध्ययन से आप जान चुके है कि ज्योतिष के सभी भाग एक दूसरे पर निर्भर है। अन्योन्याश्रय के इस सम्बन्ध के कारण ज्योतिष के सभी भागों में समान अधिकार प्राप्त करना आवश्यक होता है। मुख्यतः ज्योतिष के बाकी सभी भागों की जानकारी प्राप्त करने के लिए सिद्धान्त ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक होता है। साथ ही आप भास्कराचार्य जैसे महान् ज्योतिर्विद के शब्दों में सिद्धान्त ज्योतिष के महत्त्व से सम्बन्धित जानकारियाँ भी प्राप्त की हैं।

1.7 बोध प्रश्नों का उत्तर

1.3.3

1. स्पष्ट ग्रह।
2. वेधादि से प्राप्त ग्रह को दृगुपलब्ध ग्रह कहते है।
3. आचार्य आर्यभट को।
4. तन्त्र ।
5. दृक् तथा गणित् को एक करने वाला

आचार्य भास्कर स्फुटक्रिया के वर्णन के सन्दर्भ में इस शब्द का प्रयोग करते है। स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या - या दृग्गणितैक्यकृत् सा स्फुटक्रिया। जो प्रक्रिया दृगुपलब्ध और गणित से प्राप्त दोनों को एक करने के लिये किया जाता है।

1.4.4

1. ग्रहों को जहाँ पहचाना जाता है, अथवा राशिचक्र को , अथवा ग्रहों की कोणीय गति को नापने के लिये कल्पित वृत्त
2. सूर्य को क्षेत्र व राशि चक्र का सम्पूर्ण भ्रमण करने के लिये जो कालावधि अपेक्षित है।
3. तीन
4. आचार्य आर्यभट
5. गणित, कालक्रिया और गोल

1.5.3

1. लग्न बल
2. ग्रह
3. आज्य रहित भोजन, राज्य हीन राजा, वक्ता से रहित सभा
4. दृगुपलब्ध तथा गणितागत को एक करने की प्रक्रिया, अथवा मध्यम तथा वेध से प्राप्त ग्रहों को एक बनाने की व तुल्यता सादन करने की प्रक्रिया।
5. स्पष्ट ग्रह

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली।

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मध्यम ग्रह का साधन कैसे किया जाता है?
2. वेध के द्वारा ग्रह कैसे प्राप्त किया जाता है?
3. काल साधन किस लिये किया जाता है?
4. काल की क्या आवश्यकता है?
5. विभिन्न ग्रहों से काल का साधन कैसे किया जाता है?

इकाई - 2 सूर्यादि ग्रहों के भगण

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भगण का सामान्य परिचय

2.3.1 उत्पन्न होने वाली शंकायें

2.3.1.1 ग्रह किसे कहते है?

2.3.1. 2 ग्रह कहा चलते है?

2.3.1.3 राशि चक्र में कौन भ्रमण करते है?

2.3.1.4 ग्रह कक्षा का केन्द्र

2.3.1.5 मध्यम ग्रह किसे कहते है?

2.3.1.6 स्पष्ट ग्रह किसे कहते है?

2.3.1.7 फल किसे कहते है?

2.3.2 भगण का ज्योतिषीय अभिप्राय

2.3.2.1 भगण कहाँ प्रारम्भ होता है?

2.3.2.2 भगणारम्भ स्थान कल्पना या यथार्थ

2.3.2.3 भगण किनके और कितने प्रकार के?

2.3.3 सारांश

2.3.4 बोध प्रश्न

2.4 विभिन्न आचार्यों के द्वारा उक्त भगण

2.4.1 सूर्यसिद्धान्त में प्रोक्त विभिन्न भगण

2.4.1.1 एक महायुग में सूर्यादि ग्रहों के भगण

2.4.1.2 एक महायुग में चन्द्रोच्च, शीघ्रोच्च व पात भगण

2.4.1.3 युगादि भगण से कल्पादि भगण

2.4.1.4 मन्दोच्च व पात भगण

2.4.2 सिद्धान्तशिरोमणि में प्रोक्त विभिन्न भगण

2.4.3 आर्यभटीयम् में प्रोक्त विभिन्न भगण

2.4.4 बोध प्रश्न

2.5 भगण का प्रयोग

2.5.1 बोध प्रश्न

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-502 के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। हम इस इकाई में ग्रहों के भगणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इससे पहले की इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में तथा उसके महत्त्व के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। सिद्धान्त ज्योतिष काल साधन की विधाओं के बारे में बतलाता है। काल का साधन ग्रहों के आधार पर किया जाता है। ग्रहों का साधन दो प्रकार से किया जाता है। पहला प्रकार है गणितीय प्रकार अर्थात् गणित के माध्यम से ग्रहों का साधन करना तथा दूसरा प्रकार है वेध प्रक्रिया के द्वारा ग्रहों का साधन करना। ये दोनों दो अलग अलग प्रकरण नहीं है। इन दोनों प्रकारों व विधाओं के माध्यम से प्राप्त ग्रह एक ही होने पर उसे स्पष्ट ग्रह कहते है तथा उसी को काल साधन हेतु प्रयोग करते है।

गणित के आधार पर ग्रहों का साधन करने के लिए त्रैराशिक विधि का प्रयोग किया जाता है। त्रैराशिक विधि से ग्रहों का साधन करने के लिए मुख्य रूप से आवश्यक है ग्रहों की भगण संख्या। इस इकाई में हम ग्रह भगणों के सामान्य परिचय से लेकर विस्तृत साधनादि विधाओं के बारे में अध्ययन करेंगे। इस इकाई में तीन खण्ड प्रस्तुत हैं। पहले खण्ड में हम भगण शब्द का सामान्य अर्थ तथा ग्रह साधन की दृष्टि से भगण की परिभाषा आदि की जानकारी प्राप्त करेंगे। द्वितीय खण्ड में हम विभिन्न आचार्यों के मतानुसार सूर्यादि ग्रहों की भगण संख्या इत्यादि की जानकारी प्राप्त करेंगे। तीसरे खण्ड में सूर्यादि ग्रहों की प्रदत्त भगण संख्याओं का प्रयोग किस प्रकार से ग्रह साधन में प्रयुक्त होता है इसकी आवश्यक जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.2 उद्देश्य

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य भगणों से सम्बन्धित अत्यधिक जानकारियों को प्राप्त कराना है।
- भगण शब्द की व्युत्पत्ति तथा परिचय से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना है।
- इस इकाई का उद्देश्य सूर्यादि ग्रहों की भगण संख्या से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना है।
- ग्रह साधन में ग्रहभगणों की भूमिका से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना इस इकाई का उद्देश्य है।
- विविध ग्रन्थों में प्रदत्त भगणों की संख्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना भी इस इकाई का उद्देश्य है।

2.3 भगण का सामान्य परिचय

ग्रह राशिचक्र में भ्रमण करते हैं। ग्रह अपने अपने विमण्डलों में भ्रमण करते हैं। राशि चक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में है किन्तु ग्रहकक्षा अथवा ग्रहविमण्डलों का केन्द्र भूकेन्द्र में नहीं है। ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र में न होने के कारण मध्यम ग्रह तथा स्पष्ट ग्रह में फल नामक अन्तर उत्पन्न होता है। उपरि लिखित ये चार वाक्य आपस में एक दूसरे का विरोध करते हैं। तथा इनको प्रथम दृष्टि से पढने पर अनेक प्रकार की शंकाओं का जन्म होता है।

2.3.1 उत्पन्न होने वाली शंकायें

- ग्रह राशि चक्र में भ्रमण कर रहे हैं तो अपने अपने विमण्डलों में भी कैसे भ्रमण कर सकते है?
- राशि चक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में है तो ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र में क्यों (कैसे) नहीं है?
- मध्यम ग्रह किसे कहते है?
- स्पष्ट ग्रह किसको कहते है?
- केन्द्र एक न होने से फल नामक अन्तर कैसे उत्पन्न होता है?

2.3.1.1 ग्रह किसे कहते है?

गृह्णातीति ग्रहः। एक प्रकार से ग्रह की परिभाषा इस वाक्य में दी गई है कि जो ग्रहण करता है उसे ग्रह कहते है। ग्रहण किसका और कौन करते हैं? आकाश में दो प्रकार के खगोलीय पिण्ड देखने को मिलते हैं। उनमें एक वर्ग के पिण्ड तो घडी में लिखे हुए अंकों के जैसे एक ही स्थान में रहते है। दूसरे किस्म के पिण्ड उन स्थिर पिण्डों को एक एक करके पार करते हुए चलते है। अर्थात् वे उन पिण्डों को एक एक करके ग्रहण करते हैं। जैसे घडी में सूइयां करती हैं। इन दो प्रकार के पिण्डों में से जो स्थिर है अर्थात् चलते नहीं हैं उनका नाम है नक्षत्र। इसीलिए नक्षत्र के लिए कहा जाता है कि **न क्षरति चलतीति नक्षत्रम्** यह परिभाषा दी जाती है। अर्थात् जो चलता नहीं है वह नक्षत्र है जिनकी संख्या 27 हैं। और उन नहीं चलने वाले नक्षत्रों का जो ग्रहण करते हैं वे ग्रह हैं।

2.3.1. 2 ग्रह कहा चलते है?

वास्तविक ग्रह अपनी अपनी कक्षाओं में चलते है। अर्थात् ग्रह वास्तव में अपनी अपनी नियमित कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। वे पृथ्वी से समान दूरी में नहीं है। उनमें कुछ पृथ्वी के समीप में है तो कुछ पृथ्वी से दूर में। वे आपस में भी कहीं नहीं मिलते हैं। वे एक दूसरे का ग्रहण वास्तव में नहीं कर सकते है।

2.3.1.3 राशि चक्र में कौन भ्रमण करते है?

राशि चक्र एक अद्भुत वैज्ञानिक कल्पना है। वह कल्पना इसलिए है कि राशि चक्र नामक कोई चक्र नहीं है । यह कल्पना मात्र है। आकाश में वास्तव में स्थित तारासमूहों का भू सापेक्ष्य जो वर्तुलाकार स्थिति है उसी का राशि चक्र के रूप में ग्रहण करने के कारण इसे वैज्ञानिक कल्पना कह सकते हैं । राशियों में स्थित तारें भी पृथ्वी से समान दूरी में नहीं है। वे आपस में भी क्रोशों अन्तराल में है। किन्तु वे सभी पृथ्वी के चारों ओर समान दूरी में नजर आते है। इसका कारण है मनुष्य की दृष्टि सीमित होना। (अर्थात् मनुष्य के नेत्रों के द्वारा देखने की सीमा चारों ओर समान होना)।

तारे ग्रहों से कई गुणा दूरी में स्थित हैं। अतः ग्रह अपने अपने स्थानों में जब चलते है तो वे पृथ्वी से किसी न किसी तारा समूह में ही चिह्नित होते है। अर्थात् जो ग्रह जिस तारा समूह में चिन्हित हुआ वही उसका स्थान है। अर्थात् हम वास्तव में ग्रह जहा घूम रहा है उसको स्वीकार करके ग्रह की तारा समूह में जो स्थिति नजर आ रही है उसका ग्रहण करते है।

इस प्रकार से स्वीकारने का भी वैज्ञानिक कारण है। ग्रह की वास्तविक स्थिति को न तो हम नाप सकते है न हमें उस स्थान की कोई आवश्यकता। पृथ्वी में स्थित मानव अपने स्थान की दृष्टिकोण से आसमान को देखते हुये समय का साधन करना चाहता है। स चाहत के अन्तर्गत उसने आसमान को अपनी घडी मान ली और घडी की सीमा या आकार को ही राशिचक्र के रूप में स्वीकार काया है। उस राशिचक्र में स्थित तारासमूहों से उत्पन्न राशियाँ ही काल के विभिन्न अंग है। उन काल विभागों की कलना (गणना) करने हेतु उपयोग में आने वाले ग्रह नामक सूइयाँ है। इस घडी की विशेषता यह है कि मानव मात्र इसका प्रयोग कर सकता है। इनके नियमों में मानव हस्तक्षेप नहीं कर सकता और न ही इनको अपने मन मानी ढंग से चलाने के लिए मजबूर कर सकता। अर्थात् प्रकृति के द्वारा प्रदत्त एक अनौखी सहज घडी राशिचक्र और ग्रह हैं।

अर्थात् ज्योतिष शास्त्र में जिनको ग्रह कहते हैं वास्तव में वे राशिचक्रस्थ ग्रहों के स्थान हैं। इन्ही स्थानों की कोणीय स्थिति को मानव नापता है। इनको नापने के लिए उस चक्र में मानव जिस बिन्दु को चिन्हित किया है वह अश्विनी का प्रारम्भ या रेवती का अन्त बिन्दु है। इस स्थान की वर्तमान इकाई में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

2.3.1.4 ग्रह कक्षा का केन्द्र

चारों ओर पृथ्वी से बराबर की दूरी में मानव नेत्रों की दृष्टि क्षमता के आधार पर राशियाँ दिखाई देती है। मानव की दृष्टि चारों ओर से समान होने के कारण उस राशिचक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में

ही है। अर्थात् चारों ओर वर्तुलाकार कक्षा में दिखने वाले राशि चक्र के बीचों बीच में पृथ्वी है। अतः पृथ्वी पर स्थित लोगों को वास्तविक ग्रह न दिखकर इन राशियों में मात्र इनका स्थान दिखता है।

ग्रह भ्रमण करते करते कभी पृथ्वी के समीप आ जाते हैं तथा कभी - कभी पृथ्वी से दूर हो जाते हैं। यदि ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भू केन्द्र में होता तो यह कभी सम्भव नहीं हो सकता। गणित के नियम के आधार पर केन्द्र उसे कहते है जो वृत्त के या कक्षा के प्रत्येक बिन्दु से समान दूरी में स्थित हो। वृत्त के अन्दर इस प्रकार का एक ही बिन्दु हो सकता है। यदि ग्रह कक्षा का केन्द्र भूकेन्द्र में रहता तो ग्रह प्रत्येक स्थान में पृथ्वी से समान दूरी में भ्रमण करता। किन्तु वास्तविक स्थिति इस प्रकार से भिन्न है।

सिद्धान्त ज्योतिष में कहा जाता है कि ग्रह अपने नीच बिन्दु की ओर जब अग्रसर होता है तो वह तेजी से चलता है। ग्रहकक्षा में भूकेन्द्र से समीपतम स्थान नीच है। इसी प्रकार ग्रह की कक्षा में जो स्थान पृथ्वी से दूरतम रहता है उसे उच्च कहते है।

अर्थात् ग्रह पृथ्वी के चारों ओर वृत्ताकार कक्षाओं में भ्रमण नहीं करते हैं। वे अपने अपने कक्षाओं में भ्रमण करते है तथा उन कक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र से हटकर है।

2.3.1.5 मध्यम ग्रह किसे कहते है?

इस इकाई में हमें अब तक जिन बिन्दुओं को पढने का अवसर मिला है वे वास्तव में अपने लिए नए है। जन साधारण में कुछ मान्यताएँ सदियों से चलती आ रही हैं। उन मान्यताओं के बारे में शास्त्र क्या बताना चाह रहा है या क्या बता रहा है इस बात को आम आदमी ध्यान देने का प्रयास नहीं करता है। अतः समाज में कुछ भ्रान्तियाँ भी देखने को मिलती है। किन्तु वर्तमान अध्ययन के समय में हमारी जिज्ञासा उन भ्रान्तियों के प्रति नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि शास्त्र को शास्त्र की दृष्टि से अथवा विषय को उसके वास्तविक स्वरूप में देखने व जानने के लिए यह प्रयास किया जा रहा है। इस क्रम में ऊपर दिये गये विवरणों के आधार पर उत्पन्न होने वाला अगला प्रश्न ही मध्यम ग्रह से सम्बन्धित है।

ग्रह स्थान और वास्तविक ग्रह दोनों यदि एक ही होते तो मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह नामक भेद देखने को नहीं मिलता। किन्तु ग्रहों के भ्रमण मार्ग भिन्न भिन्न होने के कारण, पृथिवी से इन कक्षाओं की दूरी समान न होने के कारण, कक्षाओं के दक्षिणोत्तरान्तर में भी अधिक मात्रा में व्यत्यास होने के कारण ग्रहों को ग्रहस्थान के रूप में देखने का अवसर नहीं मिलता है। ग्रहों के आधार पर काल का साधन करना है। इसके लिए नित्य गतिशील ग्रह मात्र सहयोग नहीं कर सकते है। उनके सापेक्ष स्थान का ज्ञान उनकी गणना हेतु अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी गणना की सुलभता के

लिए की गई व्यवस्था ही मध्यम ग्रह है।

मध्यम ग्रह आसमान में देखने से नहीं मिलता है। अर्थात् वह आसमान में रहता ही नहीं है। ग्रहों के भगणों के आधार पर प्रतिदिन की ग्रह की दिन की औसतन गति निकाल कर उस औसतन गति के आधार पर निकले औसतन ग्रह को ही मध्यम ग्रह कहते है। विलक्षण गति युक्त ग्रह की आसन्न स्थिति को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाला प्रयास ही मध्यम ग्रह है। मध्यम ग्रह साधन करने का मूल आधार ही भगण है जो विस्तृत रूप से इस इकाई में वर्णित है।

2.3.1.6 स्पष्ट ग्रह किसे कहते है?

हमने जानकारी प्राप्त की कि गणित के आधार पर प्राप्त ग्रह को मध्यम ग्रह कहते है। जो वास्तविक ग्रह से आगे या पीछे रहता है। कुछ ही सन्दर्भों में वह वास्तविक ग्रह के समान प्राप्त होता है। गणितागत ग्रह से वास्तविक ग्रह अलग होने के कारण गणित से ग्रह जिस स्थान में प्राप्त हुआ उस स्थान में आसमान में देखने पर नहीं मिलता है। अर्थात् आसमान में दिखाई देने वाला ग्रह मध्यम ग्रह से आगे या पीछे रहता है। वास्तविक ग्रह को आसमान में यन्त्रादि की सहायता से देखने पर जहां वह दिखता है उसी स्थान को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है तथा उस स्थान में दिखने वाला ग्रह ही स्पष्ट ग्रह कहलाता है। ध्यातव्य विषय यह है कि पृथ्वी के परिप्रेक्ष्य में वास्तविक ग्रह राशि चक्र के जिस स्थान में देखने को मिल रहा है उसे स्पष्ट ग्रह कहते है।

2.3.1.7 फल किसे कहते है?

गणित से साधन करने पर प्राप्त हुआ मध्यम ग्रह तथा यन्त्रादि की सहायता से आसमान में देखने पर दिखाई देने वाले स्पष्ट ग्रह के बीच का जो अन्तर होता है उसे फल कहते है। अर्थात् जितने अन्तर से स्पष्टग्रह मध्यमग्रह से अन्तरित है उसी अन्तर की फल संज्ञा है।

2.3.2 भगण का ज्योतिषीय अभिप्राय

ज्योतिष शास्त्र में भगण एक चक्कर के बराबर होता है। यह चक्कर ग्रह से सम्बन्धित है। ग्रह अपनी कक्षा में अनवरत भ्रमण करता रहता है। किन्तु भगण के लिए लिया गया ग्रह वास्तविक ग्रह न होकर ग्रह का राशिचक्रीय स्थान है। अर्थात् राशिचक्र में ग्रह जहाँ दिखता है उसे ग्रह स्थान कहते है। उसी ग्रहस्थान को ग्रह के रूप में ज्योतिष में लिया जाता है। उसी ग्रह स्थान की राशिचक्र में जो कोणात्मक व कोणीय गति उत्पन्न होती है उस गति से ग्रह को पूरे राशि चक्र का एक चक्कर व भ्रमण में जो समय लगता है उसे ही भगण काल कहते है। तथा इस प्रकार के चक्कर व भ्रमण को ही एक भगण कहते है।

भम् शब्द से राशि तथा नक्षत्र दोनों का ग्रहण होता है। गण शब्द का अर्थ समूह है। राशियों

के अथवा नक्षत्रों के समूह को भगण कहते हैं। ग्रह जितने समय में राशियों का अथवा नक्षत्रों का भोग करता है वह ग्रह का एक भगण काल है। उस प्रकार से राशि चक्र का एक परिक्रमा ही भगण शब्द से जाना जाता है।

2.3.2.1 भगण कहाँ प्रारम्भ होता है?

वृत्त व चक्र में न आदि होता है न अन्त। उसमें किसी न किसी स्थान को आदि अथवा अन्त मानना पडता है। ज्योतिष में उस आदि और अन्त बिन्दु का स्पष्ट निर्देश प्राप्त है। सूर्य सिद्धान्त में प्राप्त होता है ** **पौष्णान्ते भगणः स्मृतः**** । पौष्ण संज्ञा से रेवती नक्षत्र को लिया जाता है। अतः रेवती नक्षत्र के अन्त में भगण की समाप्ति होती है। रेवत्यन्त के साथ-साथ ही अश्विनी का भी प्रारम्भ स्थान होता है। अतः ग्रह का भ्रमण अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भ से रेवती नक्षत्र के अन्त तक जितने अन्तराल में होता है उसे एक भगण काल कहते है। इसी तरह ग्रह को अश्विन्यादि में भ्रमण को प्रारम्भ करके रेवत्यन्त प्राप्त होने तक एक भगण कहते है।

2.3.2.2 भगणारम्भ स्थान कल्पना या यथार्थ

चक्र में आदि और अन्त न होने के कारण कल्पना करने की या मानने की आवश्यकता पडता है। किन्तु राशि चक्र में ग्रहादि के संचार को जानने के लिए जिस स्थान को प्रारम्भ व अन्त स्थान के रूप में लिया गया है वह कल्पना के अतीत है। इन्हीं बिन्दुओं को प्रारम्भिक तथा अन्त बिन्दु मानने के अनेक वैज्ञानिक आधार हैं। सृष्ट्यादि में सभी ग्रह स्वोच्चादि सहित मेषारम्भस्थानपर थें। वह स्थान अश्विनी नक्षत्र का भी प्रारम्भिक स्थान (बिन्दु) है तथा रेवती नक्षत्र का अन्तिम बिन्दु। अतः भारतीय ज्योतिष में कथित चक्र का यह आरम्भ बिन्दु कल्पना न होकर सृष्टि की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है। सम्पूर्ण विश्व व ब्रह्माण्ड प्रवह नामक वायु के कारण अत्यन्त वेग से भ्रमण कर रहा है। वर्तमान प्रसरित विज्ञान के अध्येता लोग इसे भूमि के भ्रमण के कारण उत्पन्न सापेक्ष स्थिति भी कह सकते है। अर्थात् चल पृथ्वी के सापेक्ष ग्रहादि का साधन करने के लिए उसको अचलत्व तथा उसकी गति के समान गति को उसके चारों ओर के विश्व में आरोपित करने से ज्योतिष से सम्बन्धित अथवा विज्ञान से सम्बन्धित किसी भी तर्क में विकार उत्पन्न नहीं होता है। तथा भूमि के अभिप्राय से ग्रहादि का साधन अभीष्ट होने के कारण भूमि के स्थिरत्व होने की कल्पना ही युक्ति युक्त है।

2.3.2.3 भगण किनके और कितने प्रकार के?

किसी निश्चित स्थान से भ्रमण करना प्रारम्भ कर पुनः एक निर्धारित स्थान के अन्तर्गत उस स्थान को प्राप्त करने वाले किसी भी पिण्ड का एक भ्रमण ही भगण कहलाता है। ज्योतिष के उद्देश्यों

की पूर्ति के लिए परिकल्पित भगण स्थिति भी अनेक प्रकार की है। सभी ग्रह प्राग्गति के साथ पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करते हैं। ग्रहों की गति और स्थिति से सम्बन्धित जानकारियों को इस इकाई के प्रारम्भ में हम पढ चुके हैं। ज्योतिष में भगण की परिगणना ग्रहों के साथ साथ ग्रह गति को प्रभावित करने वाले स्थानों का भी लिया गया है।

संक्षेप में जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रहगतिप्रभावकारक स्थानों का परिचय इस प्रकार से है। अपनी अपनी कक्षा में प्रवह वायु के कारण प्रेरित ग्रहों की गति को प्रभावित करने वाले स्थान मुख्यतः तीन प्रकार के होते है। वे है शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात। इन स्थानों के बारे में आप यथा स्थान जानकारी प्राप्त करेंगे। उच्च ग्रह कक्षा में भूकेन्द्र से दूरतम प्रदेश है। ग्रह का मन्दप्रतिवृत्त में दूरतम बिन्दु मन्दोच्च तथा शीघ्रप्रतिवृत्त में दूरतम बिन्दु शीघ्रोच्च कहलाता हैं। ये दोनों ग्रह की पूर्वाभिमुख गति के घटने और बढने के मुख्यकारक होते हैं।

यद्यपि पूरा ब्रह्माण्ड भ्रमणशील है तथा भूमि के अभिप्राय से देखने पर चारों ओर का विश्व निश्चित नियमों का अनुकरण करते हुये भ्रमण करता हुआ स्पष्ट नजर आता है। किन्तु ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य काल साधन है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चारों ओर भ्रमण शील सम्पूर्ण विश्व में से पूर्वाभिप्रायिक गति से युक्त ग्रह संज्ञक पिण्ड ही लिए गये है। अतः सिद्धान्त ज्योतिष में ग्रह तथा ग्रहों की गति के कारक के रूप में जानने वाले उच्च एवं पात संज्ञकों के भी भगण स्वीकार किये गये हैं। इनके अतिरिक्त किसी की भी गति व भगण कार्य साधन में उपयुक्त नहीं होते हैं।

2.3.3 सारांश

इकाई के इस भाग का सारांश विषय की जानकारी तथा अवगमन को और सरल कर सकता है। इकाई के इस भाग में हम ने भगण के बारे में एक रेखात्मक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया हैं। ग्रहों के भगणों के बारे में जानने के लिए भगण शब्द का अर्थ भी जानना आवश्यक होता है। हमने यह जाना है कि राशिचक्र की एक बार आवृत्ति के लिए ग्रह को जो समय लगता है उसे भगण काल कहते है तथा उस एक चक्कर को भगण कहते है। चक्र , क्षेत्र या वृत्त में कोई प्रारम्भिक या कोई अन्तिम बिन्दु नहीं होते हैं। उसकी परिधि में प्रत्येक बिन्दु प्रारम्भिक है तथा प्रत्येक बिन्दु अन्तिम है। अतः जिज्ञासा साधारण रूप से उत्पन्न होती है कि राशिचक्र में भगण को जानने की दृष्टि से किस स्थान को प्रारम्भिक माना एवं किस स्थान को अन्तिम बिन्दु माना है। इसी क्रम में " पौष्णान्ते भगणः स्मृतः " इस सूर्यसिद्धान्तकार की उक्ति का भी परिचय हुआ।

ग्रहों के भगणों के बारे में विचार करते समय स्वाभाविक रूप से कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। वे ग्रह के बारे में और ग्रहों के भ्रमण कक्षाओं के बारे में हो सकते है। अतः इसी भाग के अन्तर्गत हमने

संक्षेप में इन जिज्ञासाओं को भी शान्त करने का प्रयास किया हैं। भगण की परिकल्पना भ्रमण करने वाले प्रत्येक पिण्ड की कर सकते हैं। विश्व की प्रत्येक वस्तु भ्रमणशील ही है। आधुनिक विज्ञान से प्राप्त जानकारियों के कारण भी ज्योतिष में नये प्रश्न उत्पन्न होते हैं। उन सबको ध्यान में रखते हुए ग्रह के गतिकारकों को तथा मान्य भगणों के बारे में भी जानकारियाँ इस भाग में प्राप्त की थी।

2.3.4 बोध प्रश्न

1. भगण किसे कहते है?
2. भगण का प्रारम्भ स्थान क्या है?
3. ग्रह किस वृत्त में भ्रमण करते है?
4. गृह्णातीति ग्रहः । यह उक्ति किन के लिए प्रयुक्त है?
5. पौष्णान्ते भगणः स्मृतः। यह कहा की उक्ति है?
6. ग्रहों के अतिरिक्त भगण किनके होते है?
8. ग्रह स्थान कहा होता है?
9. मध्यम और स्पष्ट ग्रह का अन्तर क्या कहलाता है?
10. गणितागत ग्रह को क्या कहते है?
11. वेध से प्राप्त और गणितागत ग्रह एक होने पर क्या कहलाता है?

2.4 विभिन्न आचार्यों के द्वारा उक्त भगण

सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित प्रत्येक ग्रन्थ में भगणों की संख्या उपलब्ध है। उसी प्रकार से जितने आचार्य अपनी विशेषताओं के साथ ग्रह साधन विधि बताएँ हैं उन सभी की भगण संख्या भी उपलब्ध है। भगणविचार के सन्दर्भ में मुख्य रूप से जिन परम्पराओं का प्रचलन सिद्धान्त ज्योतिष में देखा जाता है उनकी जानकारी विषयावगाहन तथा नैपुण्य के लिए पर्याप्त है। इस भाग में सूर्य, आर्य तथा ब्रह्म परम्पराओं में उक्त भगणों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ध्यातव्य है कि आप पूर्व इकाई में तीनों परम्पराओं से सम्बन्धित सामान्य जानकारी प्राप्त किये हैं।

2.4.1 सूर्यसिद्धान्त में प्रोक्त विभिन्न भगण

2.4.1.1 एक महायुग में सूर्यादि ग्रहों के भगण

ग्रह का नाम	भगण संख्या
सूर्य, बुध और शुक्र	४३२००००

चन्द्र	५७७५३३३६
मंगल	२२९६८३२
बृहस्पति	३६४२२०
शनि	१४६५६८

महायुग का प्रमाण भी ४३२०००० सौर वर्षों के समान है। अर्थात् सूर्य के भगणों के समान ही महायुगीय वर्षों की संख्या भी है। अवगमन हेतु युगादि व्यवस्था को भगण विचार सन्दर्भ में पुनः एक बार स्मरण कर सकते है।

उपरोक्त सारिणी में सूर्य, बुध तथा शुक्र के लिए समान भगण दिए है। स्वल्पान्तर के कारण सूर्य के ही भगणों के समान बुध और शुक्र के भी भगण लिए जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि इन ग्रहों के भगणों का विचार नहीं किया जाता है। बुध एवं शुक्र के जो भगण है वे उनके ही शोघ्रोच्च के माने जाते है।

2.4.1.2 एक महायुग में चन्द्रोच्च, शीघ्रोच्च व पात भगण

ग्रह का नाम	**शीघ्रोच्च भगण संख्या**
चन्द्र	४८८२०३ (मन्दोच्च)
कुज	४३२००००
बुध	१७९३७०६०
शुक्र	७०२२३७६
बृहस्पति	४३२००००
शनि	४३२००००

चन्द्रमा का शीघ्रोच्च नहीं है। अतः यहाँ चन्द्रोच्च का महायुगीय भगण प्रदत्त है। उच्च से तात्पर्य मन्दोच्च से है। मंगल, बृहस्पति और शनि के शीघ्रोच्चों के लिए सूर्य का ही महायुगीय भगण दिया गया है। अर्थात् मध्यम सूर्य ही मंगल, बृहस्पति और शनि का शीघ्रोच्च है। ध्यातव्य है कि उच्च और पात ग्रह के गति कारक होते है। इनसे सम्बन्धित अधिक जानकारी हम ग्रह गति विवेचन नामक इकाई में प्राप्त कर सकते है।

2.4.1.3 युगादि भगण से कल्पादि भगण

उपरोक्त महायुगीय भगणों के आधार पर कल्पगत भगणों को जानने की प्रक्रिया

सूर्यसिद्धान्तकार सरल रीति से इस प्रकार बताते हैं -

एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः

जिन ग्रहों के, उच्च के व पात के भगण एक महायुग अर्थात् १२००० दिव्यवर्ष या ४३२०००० सौर वर्ष के कालमान के लिए बताए गए है उनको १००० से गुणित करने पर एक कल्प के भगण प्राप्त हो जाएंगे। एक कल्प में एक हजार महायुग होते है। एक हजार महायुगों से कल्पित ब्रह्मा का एक दिन का समय व कल्प संज्ञक काल का खण्ड महायुगीय भगणों को ही सहस्रगुणित प्रमाण में धारण करते हैं।

2.4.1.4 मन्दोच्च व पात भगण

इस भाग में ग्रहों के मन्दोच्चों के भगण प्रदत्त है। चन्द्रमा का भगण पूर्व में ही प्रदत्त है। यहाँ सूक्ष्मता से ध्यातव्य विषय एक है। सूर्यसिद्धान्त में ग्रहों के तथा शीघ्रोच्चों के भगण महायुग अर्थात् ४३२०००० सौरवर्षों के दिए हैं। किन्तु मन्दोच्च के भगण कल्प काल के लिए दिये गये है केवल चन्द्रमा के मन्दोच्च को छोडकर। मन्दोच्चों की अत्यल्प गति ही कल्पीय भगण देने का एक मात्र कारण है। विभिन्न ग्रहों के मन्दोच्च भगणों को ध्यान से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाता है।

ग्रह का नाम	**मन्दोच्च भगण संख्या**
सूर्य	३८७
भौम	२०४
बुध	३६८
गुरु	९००
शुक्र	५३५
शनि	३९

इसी प्रकार से चन्द्रमा को छोडकर अन्य सभी ग्रहों के पातों के भगण भी कल्प प्रमाण के बताये गये हैं। यहाँ पर भी कारण मन्दोच्चवत् ही जानना है। अर्थात् अत्यन्त अल्प गति से अत्यल्प भगण उत्पन्न होने के कारण पातों का भी भगण कल्प काल के लिए ही पठित है।

ग्रह का नाम	**पात भगण संख्या**
चन्द्र	२३२२३८ (महायुगीय)

भौम	२१४
बुध	४८८
गुरु	१७४
शुक्र	९०३
शनि	६६२

इन भगणों की संख्या को देखने पर यह सरलता से समझ में आ जाता है कि इनका भगण महायुग के लिए क्यों नहीं बताया गया है। उदाहरण के लिए सूर्य मन्दोच्च का भगण एक कल्प में ३८७ बताया गया है। कल्प में एक हजार महायुग होते हैं। अर्थात् लगभग २.५ महायुगों में सूर्य मन्दोच्च का एक भगण पूरा होता है। अर्थात् सूर्य मन्दोच्च को राशि चक्र का एक बार भ्रमण करने के लिए १११६२७९० सौरवर्ष का समय लगता है। अतः इन सभी का भगण महायुग के लिए नहीं कहा गया।

2.4.2 सिद्धान्तशिरोमणि में प्रोक्त विभिन्न भगण

सिद्धान्त शिरोमणि में आचार्य भास्कर के द्वारा कल्पगत व ब्रह्मदिनगत भगणों की संख्या ही बताई गई है। सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहगणित नामक तीसरे भाग में मध्यमाधिकार के भगणाध्याय में आचार्य के द्वारा भगण संख्या प्रदत्त है। ध्यातव्य है कि सिद्धान्तशिरोमणि नामक सिद्धान्त ज्योतिष का ग्रन्थ चार भागों में विभक्त है। काल क्रम में प्रथम भाग, जिस में आचार्य के द्वारा व्यक्त गणित का वर्णन किया गया है, लीलावती नाम से पृथक ग्रन्थ के रूप में प्रचलन में आ गया। इसी प्रकार से द्वितीय भाग बीज गणित के नाम से प्रसिद्ध हो गया जिस में अव्यक्त गणित का वर्णन प्राप्त है। तीसरे और चौथे भागों को मिलाकर वर्तमान में सिद्धान्त शिरोमणि के रूप में प्रचलित है।

ग्रहों के भगण

ग्रह का नाम	**भगण संख्या**
सूर्य, बुध, शुक्र	४३२००००००
चन्द्र	५७७५३३०००००
भौम	२२९६८२८५२२
गुरु	३६४२२६४५५
शनि	१४६५६७२९८

मन्दोच्च भगण

ग्रह का नाम	**मन्दोच्च भगण संख्या**
सूर्य	४८०
चन्द्र	४८८१०५८५८
भौम	२९२
बुध	३३२
गुरु	८५५
शुक्र	६५३
शनि	४१

शीघ्रोच्च भगण

ग्रह का नाम	**शीघ्रोच्च भगण संख्या**
भौम	४३२००००००
बुध	१७९३६९९८६८४
गुरु	४३२००००००
शुक्र	७०२२८९४९२
शनि	४३२००००००

पात भगण

ग्रह का नाम	**पात भगण संख्या**
चन्द्र	२३२३१११६८
भौम	२६७
बुध	५२१
गुरु	६३
शुक्र	८९३

शनि	५८४

2.4.3 आर्यभटीयम् में प्रोक्त विभिन्न भगण

ग्रह भगण

ग्रह का नाम	**भगण संख्या**
सूर्य, बुध शुक्र	४३२००००
चन्द्र	५७७५३३३६
भूमि	१५८२२३७५००
भौम	२२९६८२४
गुरु	३६४२२४
शनि	१४६५६४

यहाँ पर प्रदत्त मान एक महायुग के है।

ध्यातव्य है कि प्रदत्त भगणों में पृथ्वी का भगण है। यह सर्वविदित है कि भारतीय ज्योतिर्विदों में पृथ्वी की गति के बारे में बताने वाले अकेले आचार्य है आर्यभट। किन्तु इस बात को किसी विचार वैमत्य व सिद्धान्त विरोधी मानने की आवश्यकता नहीं है। भूभ्रमण के सन्दर्भ में आचार्य के वचन तथा यहाँ पर प्रदत्त भूभगण से भी एक बात स्पष्ट हो जाती है। अन्य सभी आचार्य भपंजर की व भगोल की गति स्वीकार करते है। वस्तुतः भपंजर में व भगोल में अनुभूत होने वाली गति पृथ्वी की ही है। वास्तव में गति किस में है यह जिज्ञासावश उत्पन्न होने वाला प्रश्न है। पृथ्वी की सापेक्ष गति भपंजर में अनुभूत होती है तथा काल गणना व ग्रह साधन भू सापेक्ष होता है। अतः पृथ्वी की वास्तविक गति को चारों दिशाओं पर आरोपित करना उद्देश्यपूर्ति के लिए पूर्णतः वैज्ञानिक है। अतः भारतीय ज्योतिष में पृथ्वी में गति है कि नहीं यह कोई विचारणीय प्रश्न ही नहीं रहा।

उच्च भगण

नाम	**भगण संख्या**
चन्द्र	४८८२१९

बुध	५७७५३३३६
भौम	४३२००००
गुरु	४३२००००
शुक्र	७०२२३८८
शनि	४३२००००

पात भगण

पात का नाम	**भगण संख्या**
चन्द्र	२३२२२६

हमने गत इकाई में यह जानकारी प्राप्त की हैं कि आर्यभटीयम् में चार पाद है। वे है गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलपाद। इनमें गीतिकापाद में आचार्य के द्वारा आवश्यक सभी मान प्रदान किए गये है। बाकी दोनों आचार्यों से आर्यभट भिन्नता का प्रदर्शन अवश्य करते है। आचार्य के द्वारा ग्रहों के शीघ्रोच्च भगण बताये गये है तथा चन्द्रपात का ही भगण बताया गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आचार्य मन्दोच्च और अन्य ग्रहों के पातों का विचार नहीं करते है। भगणों के प्रस्ताव के उपरान्त आचार्य विभिन्न ग्रहों के मन्दोच्च स्थान तथा पात स्थानों का विवरण दिये है तथा उनको भी वे गतिशील मानते हैं। किन्तु अपनी कृति में आचार्य इनके भगणों का प्रस्ताव नहीं किये हैं।

2.4.4 बोध प्रश्न

1. सूर्य सिद्धान्त में प्रदत्त सूर्यादि ग्रहों के भगण किस काल खण्ड के अन्तर्गत आते है?
2. महायुगीय भगण को कल्पीय भगण कैसे बनाया जाता है?
3. सिद्धान्त शिरोमणि में प्रदत्त भगण महायुगीय अथवा कल्पीय?
4. आर्यभट के द्वारा प्रदत्त विशेष भगण किनके है?

2.5 भगण का प्रयोग

काल अनादि और अनन्त है। मानव परिप्रेक्ष्य में देखने पर विश्व भी अनन्त है अर्थात् उसका आदि और अन्त मानव मस्तिष्क से परे है। उस अनादि और अनन्त काल की गणना करने का

माध्यम ग्रह और नक्षत्रचक्र है। उस नक्षत्रचक्र में ग्रहों की निश्चित अवधि में निश्चित मात्रा में परिक्रमाएँ होती हैं। अर्थात् राशिचक्र भ्रमण में ग्रहों की कोई अनिश्चितता नहीं है।

इस सन्दर्भ में एक प्रश्न साधारणतः उत्पन्न होता है कि यदि ग्रहों की निश्चित चाल या गति है तो उनके साधन के लिए इतना आयास क्यों? ग्रह निश्चित कालावधि में काल साधन व काल गणना में मुख्य रूप से उपयुक्त होने वाले राशिचक्र की निश्चित परिक्रमाएँ अवश्य करते हैं किन्तु उन परिक्रमाओं के अन्तराल में किसी अभीष्ट समय पर काल साधन करने की चेष्टा करने पर समस्या उत्पन्न होती है। ग्रहों के दीर्घकालिक भ्रमण के अन्तर्गत समाहित चलन प्रत्येक समय में एक जैसा नहीं होता है। अत एव कहा जाता है कि ग्रहों की विलक्षण गति होती है। अर्थात् ग्रह कभी अधिक गति से तथा कभी अल्पगति से चलता है। इसी प्रकार से ग्रह स्थान विशेष पर अधिक अथवा अल्प गति को धारण कर लेते हैं।

अतः सृष्ट्यारम्भ व कल्पारम्भ व युगारम्भ में ग्रहों की गति व परिक्रमा प्रारम्भ होने के समय में जो निश्चित स्थिति है वह निश्चितता पुनः परिक्रमा की समाप्ति पर ही होती है। इसके मध्य में किसी भी अभीष्ट समय पर ग्रह को जानने के लिए आनुपातिक अथवा औसतन ग्रह की अपेक्षा होती है। उस औसतन मान का साधन करने पर ही वास्तविक ग्रह का साधन सम्भव होता है।

मुख्यतः भगणों का प्रयोग औसतन मान प्राप्त करने के लिए किया जाता है। ग्रह की वास्तविक स्थिति औसतन मान से अधिक , अल्प या कुछ सन्दर्भों में समान हुआ करती है। यदि औसतन तथा वास्तविक मान समान है तब अधिक प्रयास करने की अपेक्षा नहीं होती है। किन्तु अधिक या कम होने पर वास्तविक तथा औसतन का अन्तर जानना पडता है। ग्रह स्पष्टीकरण में उसी अन्तर को फल कहा जाता है।

पूर्व इकाई में मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह के बारे में जानकारी प्राप्त की हैं। उस सन्दर्भ में प्रस्तावित मध्यम ग्रह को ही औसतन ग्रह कहते है। औसतन मान का साधन सिद्धान्त ज्योतिष में अनुपात अथवा त्रैराशिक से किया जाता है। आनुपातिक स्थिति जानने का वैकल्पिक मार्ग ही त्रैराशिक विधि है।

यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिग्रहो भवेत्।।

ग्रह के भगण को दिनराशि से गुणा करके सावन दिनों से भाग देने पर भगणादि मध्यम ग्रह प्राप्त होता है।

मध्मग्रह = (महायुगीय ग्रह**भगण** * गतदिन) / महायुगीय सावनदिन

2.5.1 बोध प्रश्न

1. भगण संख्या का प्रयोजन कहां पर है?

2. त्रैराशिक किसे कहते है?

3. मध्यम ग्रह साधन हेतु प्रयुक्त त्रैराशिक विधि में तीन राशियों की संज्ञा क्या है?

4. मध्यम ग्रह साधन हेतु प्रयुक्त त्रैराशिक विधि से प्राप्त होने वाला चतुर्थ राशि का नाम क्या है।

2.6 सारांश

ग्रह साधन में उपयुक्त भगण का विचार इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। राशि चक्र को एक बार भ्रमण करने के लिए ग्रह को जो समय लगता है उसे भगण कहते है। एक निश्चित कालावधि में ग्रह जितने बार राशि चक्र की परिक्रमा करता है उतनी भगण संख्या कहलाती है। अनुपात से अथवा त्रैराशिक विधि से मध्यम ग्रह को प्राप्त करने के लिए इस भगण संख्या की आवश्यकता है।

विभिन्न आचार्यों के द्वारा उक्त भगणों की संख्या भी इस इकाई में प्रस्तुत किया गया। इन विचारों के साथ साथ भगण को तथा भगण के आधार पर ग्रह को प्राप्त करने के लिये अपेक्षित सभी अंशों को संक्षेम में जानने का प्रयास इस इकाई में किया गया है। काल साधन हेतु स्पष्ट ग्रह की अपेक्षा है। स्पष्ट ग्रह साधन के लिए मध्यम ग्रह अपेक्षित है तथा मध्यम ग्रह का ज्ञान भगण संख्या से ही हो सकता है। अतः ग्रहों के भगणों के विषय में सर्वादौ ज्ञान प्राप्त करना विषय प्रवेश के लिए अपेक्षित है।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.3.4

1. राशि चक्र भ्रमण को भगण कहते है।
2. भगण का प्रारम्भ स्थान पौष्णान्त है।
3. ग्रह विमण्डल में भ्रमण करते है।
4. गृह्णातीति ग्रहः । यह उक्ति ग्रह के लिए प्रयुक्त है।
5. पौष्णान्ते भगणः स्मृतः। यह सूर्यसिद्धान्त की उक्ति है।
6. ग्रहों के अतिरिक्त भगण ग्रहों के गति कारकों के होते हैं।
8. ग्रह स्थान राशि चक्र में होता है।
9. मध्यम और स्पष्ट ग्रह का अन्तर फल कहलाता है।

10. गणितागत ग्रह को मध्यम ग्रह कहते है।
11. वेध से प्राप्त और गणितागत ग्रह एक होने पर स्पष्ट ग्रह कहलाता है।

2.4.4

1. सूर्य सिद्धान्त में प्रदत्त सूर्यादि ग्रहों के भगण महायुग के अन्तर्गत आते है।
2. महायुगीय भगण को 1000 से गुणा करने पर कल्पीय भगण प्राप्त होता है।
3. सिद्धान्त शिरोमणि में प्रदत्त भगण कल्पीय भगण है।
4. आर्यभट के द्वारा प्रदत्त विशेष भगण पृथ्वी के है।

2.5.1

1. भगण संख्या का प्रयोजन मध्यम ग्रह साधन में है।
2. तीन राशियों के आधार पर चतुर्थ राशि का साधन त्रैराशिक कहलाता है।
3. ग्रह भगण, अहर्गण तथा भगण कालिक सावनदिन।
4. मध्यम ग्रह

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. कल्पित उदाहरण के आधार पर भगण संख्याओं के सहारे मध्यम ग्रह का साधन करें।
2. उच्च तथा पात के प्रदत्त भगण संख्या के आधार पर अभीष्ट कालिक उच्चादि का साधन करें।

इकाई - 3 ग्रहगति विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 ग्रह भ्रमण

3.3.1 ग्रह किसे कहते है?

3.3.2 ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?

3.3.3 ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?

3.3.4 ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?

3.3.5 बोध प्रश्न

3.4 ग्रह गति के प्रकार

3.4.1 आठ प्रकार की ग्रह गति

3.4.2 पांच प्रकार की ग्रह की गति

3.4.3 बोध प्रश्न

3.5 ग्रह गति का साधन

3.5.1 बोध प्रश्न

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 पारिभाषिक शब्द

3.1 प्रस्तावना

हमने इस ब्लाक की गत दो इकाइयों में सिद्धान्त ज्योतिष तथा ग्रह भगणों से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त की हैं। सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य कार्य काल साधन करने के लिए ग्रहों का साधन करना है। ग्रहों के साधन से तात्पर्य है राशि चक्र में अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति जानना। ग्रह गतिमान होने के कारण सदा उनका स्थान एक नहीं रहता है। इसी प्रकार से दूसरी इकाई में भगण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त की हैं। ग्रह अपनी अपनी गति से राशिचक्र का एक भ्रमण जितने समय के अन्तराल में पूरा करता है उतने समय को भगण काल कहते है तथा उस भ्रमण को भगण कहते हैं। अर्थात् ग्रहों की गति के कारण उत्पन्न परिक्रमाओं का नाम ही भगण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ग्रहों की गति सिद्धान्त ज्योतिष में मुख्य स्थान को प्राप्त करती है।

इस इकाई में ग्रहों की गति से सम्बन्धित विभिन्न विषयों की जानकारियाँ प्राप्त करेंगे। ग्रहों की गति के बारे में विचार करने से पहले ग्रह किस प्रकार से भ्रमण करते हैं इन बातों की स्पष्ट जानकारियाँ प्राप्त करना होता है। उसके पश्चात् ग्रह गति के प्रकारों से सम्बन्धित विवरण प्राप्त करना है। ग्रह भ्रमण से तथा ग्रह से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की गतियों से अवगत होने के पश्चात् ग्रह गति की साधन विधि विषय की स्पष्टता की दृष्टि से आवश्यक है। इस इकाई में इन तीनों विषयों को ध्यान में रखते हुए प्रथम भाग में ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ, द्वितीय भाग में ग्रहों की गति के विभिन्न प्रकारों पर विवरण तथा तीसरे भाग में ग्रह गति की साधन विधियाँ प्रस्तुत कीये गई हैं।

स्थान - स्थान पर विषय के अवबोध की दृष्टि से बोध प्रश्न, इकाई के अन्त में बोध प्रश्नों के उत्तर के साथ - साथ अभ्यास हेतु प्रश्न एवं सम्बन्धित ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों की विभिन्न प्रकार की गतियों के बारे में जानना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों के साधन से सम्बन्धित विविध विधियों को जानना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रह गति के विभिन्न कारणों से अवगत होना है।
- हम चारों ओर के पूरे आकाश को भ्रमण करते हुए देखते हैं। किन्तु उस आकाश के कुछ ही पिंडों का भ्रमण ज्योतिष में बताया गया है। उसका कारण जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

- विगत इकाई में जानकारी प्राप्त की है कि निश्चित समय के अन्तराल में ग्रहों के भगण निश्चित होते हैं। अर्थात् ग्रह गति निश्चित होने पर ही यह सम्भव होता है। किन्तु अभीष्ट समय का ग्रह साधन करते समय निर्देश मिलता है कि ग्रहों की गति विलक्षण होती है। इस विलक्षणता का कारण जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।
- कुल मिलाकर ग्रह कैसे भ्रमण करते हैं और उनकी कितनी प्रकार की गतियाँ होती हैं तथा उन गतियों के साधन करने का मुख्य आधार व सूत्र क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

3.3 ग्रह भ्रमण

ग्रहों का नाम प्रायः सभी सुनते हैं। प्राचीन काल में जिनको ग्रह कहते थे उनमें कुछ आधुनिक समय में ग्रहों के नाम से नहीं जाने जाते हैं तथा आधुनिक समय में कुछ और ग्रह प्राचीन सूची में जोडे गए हैं। इन दुविधाओं के बीच कुछ प्राचीन विधाओं को विज्ञान सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तो कुछ आधुनिकता के आधार पर प्राचीन विचारधारा को पाखंड कहने का प्रयास करते हैं। वास्तव में दोनों विचारधाराओं की धरा एक नहीं है तथा दोनों की तुलना नहीं की जा सकती है। दोनों विषयों का उद्देश्य तथा प्राप्तव्य एक नहीं होना ही तुलना के अभाव का मुख्य कारण है। इतने कोलाहल के बीच में ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करते समय कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। अतः यहाँ पर हम विभिन्न विषयों की जानकारी प्रश्नों के माध्यम से बिन्दुवार (प्राप्त) जानने का प्रयास करेंगे।

3.3.1 ग्रह किसे कहते है?

आकाश में अनेक पिण्ड दिखाई देते हैं। सभी एक जैसे होते हैं। उनमें नग्न चक्षुओं से अन्तर पाना सम्भव नहीं होता है। किन्तु ध्यान से देखने पर पता चलता है कि कुछ टिमटिमा रहे हैं और कुछ में कोई अन्तर देखने को नहीं मिलता है। जो टिमटिमा रहे हैं उनको हम तारें कहते हैं। तारें जलते आग के गोले हैं। आग की लपटों के कारण वे टिमटिमाते नजर आते हैं। आग की ज्वाला को दूर से देखने पर उसके रंग बदलते हुये नजर आते हैं। तारें तो हजारों करोंडों मील दूर में स्थित होने के कारण केवल टिमटिमाते नजर आते हैं। जिनमें आग की लपटे नहीं है वे भी हम को प्रकाश के साथ ही नजर आते हैं। ये सभी सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित होकर हमें नजर आते हैं अर्थात् आकाश में दो प्रकार के प्रकाशपिण्ड हैं जिनमें कुछ स्वयं आग की लपटें बिछा रहे हैं तो कुछ सूर्य के प्रकाश के

कारण प्रकाशित नजर आते हैं। एक आम आदमी की भाषा में कहना है तो स्वयं प्रकाश से प्रकाशित पिण्ड तारा है तथा जो सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित है वह ग्रह हैं। किन्तु यह साधारण परिभाषा ज्योतिष में ग्रहण करने वाले ग्रह शब्द के लिए पर्याप्त नहीं है क्यों कि ज्योतिष उस प्रकाशात्मा सूर्य को भी ग्रह ही मानता है।

अब हम सरल रीति से ग्रह को जानने का प्रयास करते हैं। **गृह्णातीति ग्रहः**। संस्कृत में ग्रहण करने के अर्थ में जो क्रिया वाचक शब्द प्रयुक्त होता है वह है **ग्रह उपादाने**। उपरोक्त उक्ति में कहा है कि **गृह्णाति इति ग्रहः**। अर्थात् जो ग्रहण करता है वह ग्रह होता है। इससे स्पष्ट होता है कि आकाश में कुछ पिण्ड कुछ पिण्डों का ग्रहण करते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु , शुक्र , शनि ये सात आकाशीय पिण्ड दूसरे पिण्डों का ग्रहण करते हुये दिखाई देता हैं।

दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रह किसे ग्रहण करते है? आकाश में एक से अधिक तारों से कुछ आकृतियाँ नजर आती हैं। इन आकृतियों का प्राचीनों ने नामकरण किया हैं। अब इस बात को सिद्ध करना कठिन है कि उन तारा समूहों का नामकरण किसने किया है। किन्तु इस नामकरण की प्रथा प्राच्य में भी तथा पाश्चात्य में भी प्रचलन में रही है। इन्ही स्थिर तारा समूहों को नक्षत्र कहते हैं। तारों से निर्मित ये नक्षत्र वैदिक साहित्य में भी महोन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित हुए हैं तथा परम्परा में इनका महत्त्व वर्णनातीत है।

ग्रहों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि वे सदा तारों के समूह से निर्मित एक ही आकार में अर्थात् नक्षत्र में दृश्य नहीं होते हैं। वे क्रमशः पूर्व दिशा की ओर एक एक नक्षत्र को पार करते हुए आगे को चलते रहते हैं। इसकी अनुभूति निरन्तर **वेध** से प्राप्त होती है। अर्थात् सूर्यादि उपरोक्त सात आकाशीय पिण्ड एक एक नक्षत्र का ग्रहण करते हुये आगे बढते हैं। अतः **गृह्णातीति ग्रहः** इस उक्ति से नक्षत्रों को ग्रहण करने में सक्षम आकाशीय पिण्डों को ग्रह संज्ञा से व्यवहार करने का उपदेश मिलता है ।

राहु को भी ज्योतिष में एक ग्रह के रूप में स्वीकारते है। यह ग्रह आकाश में दृश्य नहीं होता है। क्योंकि इसका कोई आकार ही नहीं है। यह एक स्थान विशेष है। सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमन मार्ग के मिलन बिन्दु को ही राहु कहते है। अतः राहु को मिलाकर ज्योतिष में ग्रह आठ एवं केतु सहित नौ हैं। केतु राहु का ही अगला हिस्सा है। फलित ज्योतिष में कर्मफल को जानने की प्रक्रिया में राहु के ही इस हिस्से को केतु के नाम से व्यवहार करते है।

सन्दर्भवश यहाँ राहु और केतु को प्रदत्त ग्रहसंज्ञा के सन्दर्भ में संक्षेप में विचार करते है। राहु और केतु सूर्य चन्द्र के भ्रमण मार्गों के सम्पात बिन्दु है जिनका पात नाम से सिद्धान्त ज्योतिष में

व्यवहार होता है। सिद्धान्त ज्योतिष में राहु शब्द का व्यवहार देखने को नहीं मिलता है। राहु नाम से प्रसिद्ध यह सम्पात बिन्दु यद्यपि नहीं दिखता है किन्तु इसकी पहचान सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों से होती है।

सूर्य और चन्द्र के भ्रमण मार्गों को एक करने वाले ये बिन्दु व पात भी स्थिर नहीं होते अपितु ये विलोम गति से भ्रमण करते हैं। अर्थात् वे भगोल की पश्चिमाभिमुखी गति के साथ साथ ही चलते है। इनकी पहचान चन्द्रमा के शराभाव से की जाती है। अतः हम इनको चन्द्रमा का शराभाव स्थान भी कह सकते हैं। चन्द्रमा का शराभाव भी आकाश में एक निश्चित स्थान में नहीं होता है। राशिचक्र के जिस स्थान में यह शराभाव स्थान या सम्पात बिन्दु या पात वहीं राहु का स्थान है।

राहु का आकार न होने के कारण, दिखाई नहीं देने के कारण तथा ग्रहण में अन्धकार का कार्य करने के कारण राहु और केतु को तमोग्रह कहते हैं। प्रसंगवश इनका विचार ग्रहण विचार के सन्दर्भ में विस्तार पूर्वक किया जाएगा।

3.3.2 ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?

हमने इस ब्लाक की द्वितीय इकाई में ग्रहों के भगणों के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। उस सन्दर्भ में ग्रहों की स्थिति के बारे में भी जानकारियाँ प्राप्त की थी। उनको एक बार और स्मरण करने की आवश्यकता है। पृथ्वी के चारों ओर मानव समान दृष्टि से देख सकता है। अतः मानव को चारों ओर सभी आकाशीय पिण्ड समान दूरी में विचरण करते हुए दिखाई देते हैं। इस स्थिति को भू - सापेक्ष स्थिति कहते हैं।

भूसापेक्ष सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर पूर्व की गति से चलते हैं। अर्थात् ग्रह पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर एक पथ में चलते हुए दिखाई देते हैं। उसी पथ को हम राशिचक्र कहते हैं। उसी पथ में दर्शन देने वाले अनेक तारों से उत्पन्न विभिन्न आकारों को हम ने नक्षत्र संज्ञा दी है। उन नक्षत्रों से उत्पन्न विभिन्न समुदायों को राशि संज्ञा दी गई है। ग्रह, उन राशियों को पार करते हुए अथवा ग्रहण करते हुये आगे बढते हैं।

संक्षिप्त में बताया जाए तो पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्ताकार कक्षा में राशियाँ स्थित हैं अथवा पृथ्वी से दृश्य है उसी राशिचक्र संज्ञक सूर्यभ्रमण मार्ग में ग्रह चलते हुए दिखाई देते हैं। अर्थात् ग्रह गति भूमि की दृष्टि से राशिचक्र में नापी जाती है।

3.3.3 ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?

इस विशाल विश्व में कोई भी पिण्ड स्थिर नहीं है। उस अनन्त विश्व में कब क्या हो रहा है अथवा किसके साथ क्या होगा इत्यादि प्रश्नों के उत्तर सिद्धान्त ज्योतिष में नहीं मिलते हैं। उसका

एक मात्र कारण है सिद्धान्त ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य काल का साधन करना है। भूमि के अभिप्राय से काल गणना करना ही सिद्धान्त ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति केवल ग्रहों की स्थिति से ही सम्भव है। अतः भूमि के अभिप्राय से ग्रहों में जो हाव भाव उत्पन्न होते हैं उनका ही वर्णन सिद्धान्त ज्योतिष का कार्य है।

इस प्रस्तुति का अर्थ यह भी नहीं है कि आचार्यों को विश्व की जानकारी नहीं थी। यदि नहीं होती तो वे वैश्विक पदार्थों एवं पिण्डों का वर्णन भूसापेक्ष नहीं कर पाते। यहाँ विचारणीय विषय विश्व नहीं है अपितु ग्रहसाधन है। ग्रह भी वैदिक कर्माचरण के लिए भूसापेक्ष ही अपेक्षित हैं।

सम्पूर्ण विश्व पश्चिम की ओर चल रहा है। विश्व के साथ विश्व के अंग भगोल, भचक्र, राशिचक्र, उसमें स्थित ग्रह आदि सभी अत्यन्त वेग से पश्चिम की ओर भ्रमण कर रहे हैं। उनके भ्रमण का मुख्य कारण शास्त्र में प्रवह नामक वायु बताया गया है। उस प्रवह नामक वायु के अत्यन्त वेग से प्रेरित सभी आकाशीय पिण्ड पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर अनवरत चल रहे हैं तथा वे सभी पृथ्वी की परिक्रमा लगभग 60 घटी के समय में कर लेते हैं। यह साठ घटी आज के चौबीस घण्टे के बराबर है।

नक्षत्रों के साथ साथ पश्चिम दिशा की ओर चलने वाले ग्रह अल्पगति से पूर्व की ओर भी खिसकते हैं। इस बात को सूर्यसिद्धान्त में इस प्रकार से प्रस्तुत करते है -

पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैस्सततं ग्रहाः।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः।।

इस श्लोक का पदच्छेद इस प्रकार से किया जा सकता है। पश्चात् व्रजन्तः अतिजवात् नक्षत्रैः सततं ग्रहाः जीयमानाः तु लम्बन्ते तुल्यं एव स्वमार्गगाः।

इन पदों का अन्वय इस प्रकार से किया जा सकता है। स्वमार्गगाः ग्रहाः नक्षत्रैः सततम् अतिजवात् पश्चात् व्रजन्तः जीयमानाः इव तुल्यम् एव लम्बन्ते।

स्वमार्गगाः (अपने अपने मार्गों में चलने वाले) ग्रहाः (ग्रह) नक्षत्रैः (नक्षत्रों के साथ) सततं(सदा, अनवरत) अतिजवात् (अति वेग से) पश्चात् (पश्चिम की ओर) व्रजन्तः (चलते हुए) जीयमानाः (जीता हुआ) इव (जैसे) तुल्यं एव (समान ही) लम्बन्ते (लम्बित होते है या खिसकते है)

आचार्य गण इस आकाशीय दृश्य को समझाने के लिए प्रायः कुलाल चक्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कुलाल चक्र के साथ साथ दो पहियाँ वाहन का पहिया भी उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। दोनों उदाहरणों को संक्षेप में अनुभूत करते है। कुलाल चक्र उस चक्र को कहते है जिस पर कुम्हार घडा बनाता है। चक्र में एक स्थान में छोटा से खुदरा स्थान होता है जहाँ पर कुम्हार

लकडी के सहारे चक्र को घुमाता है और चक्र के बीच में रखी मिट्टी को अपने कलाकारी हाथों से घडे इत्यादि का रूप देता है।

कुलाल चक्र में जहाँ पर लकडी को फसाने के लिए स्थान है उसे आप तारा या राशि या राशि चक्र का कोई भाग समझ सकते हैं। कुम्हार अत्यन्त वेग से जब चक्र को चलाता है तो उस चक्र में स्थित वह स्थान भी घूम जाता है। किन्तु चक्र के ऊपर उस प्रत्येक स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अब मान लीजिये जब कुम्हार चक्र चलाने वाला था उसी समय एक चींटी उस चक्र पर थी। चक्र जब जोर से चला तो चींटी ने कसकर चक्र को पकड लिया। अब जिस ओर चक्र चल रहा है उस दिशा में चक्र के साथ लकडी फसाने वाला स्थान जैसे घूम रहा है उसी तरह चींटी भी घूम रही है किन्तु साथ में वह उसकी विपरीत दिशा में धीरे धीरे खिसकने का प्रयास भी कर रही है। चक्र जब रुका तो चीटी चक्र की घूमने की विपरीत दिशा में कुछ दूर खिसक चुकी थी। अर्थात् चींटी चक्र के साथ साथ चक्र जितने चक्कर मारे उतने तो मारे ही और उसने विपरीत दिशा में चलकर अपना स्थान भी बदल दिया। यहाँ पर चक्र के साथ चींटी की घूमने में कोई विशेषता नहीं है। (क्यों कि चक्र के घूमने के कारण चक्र के ऊपर का प्रत्येक स्थान भी घूम ही रहा था।) किन्तु किसी भी स्थान की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जैसा कि चींटी के विषय में हुआ।

इसी प्रकार से दो पहियाँ वाहन या साईकल के पहिये का भी उदाहरण ले सकते हैं। जब साईकल का पहिया चलता है तो उसमें लगी सारी तिल्लियां पहिये के साथ घूमती हैं। किन्तु किसी भी तिल्ली के स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

ये दोनों उदाहरण ऊपर प्रदत्त सूर्यसिद्धान्त के वचनों को स्पष्ट करने में पर्याप्त है। प्रवह नामक वायु के कारण अत्यन्त वेग या गति से घूमने वाले ब्रह्माण्ड के साथ साथ राशि चक्र और उस में स्थिति तारों राशियाँ आदि सभी घूम लेते है। किन्तु इस प्रकार के घूमने व भ्रमण में उनके स्थानों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अर्थात् वे जहाँ है वहीं पर रहते है। किन्तु उनके साथ साथ चलने वाले ग्रह उस दिशा की विरुद्ध दिशा में भी खिसक कर राशिचक्र में अपने
अपने स्थान में परिवर्तन कर देते है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है।

अत्यन्त वेग से 60 घटी में उत्पन्न गति पर कोई ध्यान नहीं दे सकता है ब्रह्माण्ड के प्रत्येक स्थान का उतना बराबर का भ्रमण होने के कारण। किन्तु उसमें पूर्व की ओर ग्रह अपने स्थान में जो परिवर्तन कर चुका हैं वह स्पष्ट रूप से नजर आ जाता है। यही ग्रहों की गति है। इसी गति के कारण तथा इस गति के आधार पर राशियों को या नक्षत्रों को क्रमशः ग्रहण करने के कारण उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह संज्ञा दी गई है। अत एव भूमि के अभिप्राय से भूमि के चारों ओर भ्रमण करने वाले

सूर्य तथा चन्द्र भी उसी परिभाषा के तहत भारतीय ज्योतिष में ग्रह के रूप में स्वीकारे गए हैं। इनका आज के समय में ग्रहों के नाम से व्यवहृत ग्रहों से कोई लेना देना नहीं हैं। आज का जो ग्रहों का व्यवहार है उनके उद्देश्य में तथा भारतीय ज्योतिष में जिनको ग्रह संज्ञा दी गई है उनके उद्देश्यों में परिपूर्ण रूप से अन्तर है। अतः स्वतन्त्र अस्तित्व होने के कारण दोनों विधाओं की कोई तुलना भी नहीं हो सकती है।

3.3.4 ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः ग्रहाणां गतिहेतवः॥

यह श्लोक भी सूर्यसिद्धान्त से ही है। भगण राशिचक्र को कहा जाता है। उस राशि चक्र में शीघ्रोच्च मन्दोच्च और पात नामक तीन स्थान हैं। वे सभी ग्रहों के लिए अलग अलग है। उन स्थानों का कोई स्वरूप नहीं है इसलिए उनको अदृश्य रूप कहते हैं। ये तीनों ग्रहों के गति के हेतु अर्थात् कारक है।

श्लोक में प्रत्येक पद का अर्थ जानने का प्रयास करते है। अदृश्यरूपाः - जिनका दृश्य रूप नहीं हैं, कालस्य मूर्तयः - काल की मूर्तियाँ है, भगणाश्रिताः - भगण को आश्रित किए हुए हैं, शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः - शीघ्रोच्च मन्दोच्च पात आख्य (संज्ञक) है, ग्रहाणां - ग्रहों के , गतिहेतवः - गतिकारक हैं।

क्रम रहित इन पदों के अर्थ भी श्लोक के तात्पर्य को स्पष्ट करने में समर्थ है।

- **उच्च** -

जिस बिन्दु को प्राप्त कर ग्रह भूकेन्द्र से अत्यन्त दूर होता है उस बिन्दु का नाम उच्च है। अर्थात् ग्रह भ्रमण मार्ग में या ग्रह कक्षा में भूकेन्द्र से दूरतम स्थान को उच्च कहते हैं। यह उच्च भी दो प्रकार का होता है।

1. मन्दोच्च
2. शीघ्रोच्च

- **मन्दोच्च -**

यह बात तो सर्व विदित है कि ग्रह पृथ्वी की मात्र परिक्रमा नहीं करते हैं। पृथ्वी के सापेक्ष ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करते नजर आते हैं। भले वे कभी दूर और कभी नजदीक आते हैं किन्तु इसका आभास पृथ्वी से नहीं हो पाता है। ग्रह हमेशा एक ही दूरी में राशि चक्र में भूवासियों को नजर

आते हैं। किन्तु जब उन ग्रहों को हम औसतन गति के आधार पर स्पष्ट करना चाहते हैं तो हमें इन जानकारियों की आवश्यकता पड जाती है।

प्रथम इकाई में हमने जानकारी प्राप्त की थी कि काल साधन के लिए ग्रहों को स्पष्ट करना अपेक्षित है। उसी सन्दर्भ में यह भी जानकारी प्राप्त की थी कि गणितागत ग्रह और दृगुपलब्ध ग्रह की एकता को ही स्पष्ट कहते हैं। साथ में यह भी जानकारी प्राप्त की थी कि गणितागत और स्पष्ट को एक करने के लिए किया जाने वाला प्रयास ही ग्रह स्पष्टीकरण है और सिद्धान्त ज्योतिष का यही परम उद्देश्य है।

उसी स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में ग्रह की गति में अन्तर उत्पन्न करने वाला जो प्रथम कारक पाया गया था वह ग्रह में मन्द मन्द या थोडा थोडा अन्तर उत्पन्न करता है। उस मन्द अन्तर को उत्पन्न करने वाला प्रधान कारक व स्थान होने के कारण इस उच्च को मन्दोच्च कहते हैं।

- **शीघ्रोच्च -**

मन्दोच्च से ग्रह में उत्पन्न होने वाले प्रभाव को पहचानने के बाद पता चला कि अभी भी गणितागत और दृश्य ग्रह एक स्थान में नहीं प्राप्त हो रहे हैं। तब पता चला कि मन्दोच्च से भी एक और दूरतर बिन्दु ग्रह के मार्ग में उपस्थित है। यह बिन्दु ग्रह की गति में मन्दोच्च की अपेक्षा अधिक अन्तर को उत्पन्न करता है। अन्तर भी त्वरित गति से उत्पन्न होता है। इसी लक्षण के कारण इसे शीघ्रोच्च संज्ञा दी गई है।

ध्यातव्य है कि सूर्य और चन्द्रमा का शीघ्रोच्च नहीं है। उससे पहले भी ध्यान में यह बात रखनी चाहिए कि उपरोक्त परिभाषा के अन्तर्गत भारतीय ज्योतिष में सूर्य और चन्द्रमा ग्रह कहलाते है। सूर्य और चन्द्रमा की सापेक्ष गति पृथ्वी के चारों ओर होने के कारण तथा उन पर अतिरिक्त प्रभाव अन्य किसी स्थान से न पडने के कारण इनके लिए एक ही उच्च प्रकल्पित है तथा वह मन्दोच्च ही है।

- पात

ग्रहों के विमण्डल और क्रान्ति वृत्त का जहाँ मिलन होता है उसे पात कहते हैं। इस मिलन बिन्दु को प्राप्त करने के बाद ग्रह क्रान्ति वृत्त से या तो दक्षिण की ओर चले जाते हैं या उत्तर की ओर। उत्तर तथा दक्षिण की ओर चलने से ग्रहों में जो दक्षिणोत्तरान्तर उत्पन्न होता है उसे विक्षेप कहते हैं। विक्षेप का मूल कारक पात ही है।

- गति के कारक

उच्च और पात को ग्रहों की गति का कारक माना गया है। उनमें उच्च ग्रह की पूर्वाभिप्रायिक गति को प्रभावित करते हैं तथा पात दक्षिणोत्तर गति को। उच्च ग्रह को अपनी ओर आकर्षित करता है। अर्थात् उच्च की ओर ग्रह तेजी से चलता है। उच्च को प्राप्त करने के बाद ग्रह की गति धीमी हो जाती है। इसका कारण उच्च की आकर्षणशक्ति है। उच्च की ओर जाते हुए ग्रह में उच्च के प्रति आकर्षण के कारण गति बढती है और उच्च को प्राप्त करने के बाद ग्रह जब आगे बढने का प्रयास करता है तो उच्च के आकर्षण के कारण तेजी से नहीं चल पाता है।

पात को प्राप्त करने के बाद ग्रह या तो उत्तर या दक्षिण की ओर चलना प्रारम्भ करता है। यह दक्षिणोत्तर गति ग्रह को आसमान में पहचानने के लिए तथा उदयास्त आदि विभिन्न प्रक्रियाओं में आवश्यक होती है। ग्रहण के सन्दर्भ में भी ग्रहों की यह दक्षिणोत्तर गति महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

3.3.5 बोध प्रश्न

1. ग्रह किसे कहते है?
2. ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?
3. ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?
4. ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?
5. उच्च किसे कहते है?

3.4 ग्रह गति के प्रकार

ग्रह पृथ्वी के चारों और वृत्ताकार कक्षा में भ्रमण करते हैं। उस वृत्ताकार भ्रमण मार्ग का नाम ही राशिचक्र है। इस इकाई में अब तक जो भी जानकारियाँ प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार ग्रह कहाँ और किस प्रकार से भ्रमण करते हैं इस विषय को पूर्णतः समझने में सफल हुए है। ग्रह चाहे कहीं भी चलते हो या कैसे भी चलते हो किन्तु भूमि के अभिप्राय से देखने पर वे सभी राशि चक्र में पूर्व दिशा की ओर धीरे धीरे बढते हुए या खिसकते हुए नजर आते हैं और वहीं राशिचक्र स्थित ग्रहों की गति हमें काल के विभिन्न अवयवों की गणना करने में मदद करते हैं।

ग्रहों के गति के कारक उच्च और पात होते हैं। भौमादि पांच ग्रहों के दो दो उच्च हैं। उच्च ग्रह को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इस आकर्षण के कारण ग्रहों में सदा एक जैसे गति नहीं होती

है। अर्थात् ग्रह की गति हमेशा बदलती रहती है व विलक्षण रहती है।

3.4.1 आठ प्रकार की ग्रह गति

ग्रहों के ऊपर उत्पन्न विभिन्न प्रकार के आकर्षण तथा विकर्षणों के कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गति उत्पन्न होती है।

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः।।

ग्रहों की आठ प्रकार की गतियाँ होती हैं। वे हैं वक्रा, अतिवक्रा, विकला, मन्दा, मन्दतरा, समा, शीघ्रा, शीघ्रतरा। इस श्लोक में कोई क्रम नहीं बताया है। सुविधा के अनुसार
श्लोक में प्रदत्त क्रम में ही इनका संक्षिप्त विवरण जानने का प्रयास करते है।

1. वक्रा

ग्रह की स्वाभाविक गति पूर्व दिशा की ओर होती है। ग्रह गति से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण में इस जानकारी को प्राप्त किये है। उस स्वाभाविक गति के विपरीत अर्थात् पश्चिमाभिमुख गति को वक्र गति कहते हैं। इस सन्दर्भ में अनेक प्रकार के प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। सभी प्रश्नों का उत्तर ग्रह गति प्रवृत्ति को समझने का प्रयास करने से हो जाता है।

आकाश में कोई पिण्ड अचानक विपरीत दिशा में चलें यह सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक दोनों रीतियों से भी इसको स्वीकारा नहीं जा सकता है। पुनः आचार्य लोग किस प्रकार से वक्रगति की बात बतायें हैं? जो गति होती ही नहीं है उसके आधार पर कालगणना करते है? यह प्रश्न दो प्रकार के निष्कर्षों पर ले जा सकता हैं। पहला निष्कर्ष है कि आचार्य लोग अवैज्ञानिक थे तथा ज्योतिष अवैज्ञानिक है। दूसरा सम्भावित निष्कर्ष है कि आचार्य गण अपने चिन्तन से भी ज्यादा वैज्ञानिक हैं।

ग्रह की गति भूसापेक्ष होती है। अर्थात् ग्रह में उत्पन्न गति अथवा भूमि पर स्थित होकर हम ग्रह की जिस गति को प्राप्त करते हैं वह गति वास्तविक ग्रह में नहीं बल्कि भूम्यभिप्रायक ग्रह की गति होती है। अर्थात् ग्रह की जो राश्यादि स्थिति भूमि से प्राप्त होती है वह किसी अन्य स्थान से प्राप्त नहीं हो सकती है।

ग्रह अपने मार्ग में निरन्तर भ्रमण करते हैं। यह गति रैखिक गति कहलाती है। उस गति के कारण आगे बढने वाला ग्रह भूकेन्द्र में जो कोण उत्पन्न करता है वह कोणीय गति है। इसी कोणीय गति का साधन भारतीय ज्योतिष में किया जाता है। अतः ग्रह में दृश्य वह गति पूर्ण रूप से भूमि पर उद्देश्य पूर्ति के लिए है।

भूमि के अभिप्राय से ग्रह अपने मार्ग में विपरीत चलता हुआ जो नजर आता है उसे वक्रगति कहते है।

2. अतिवक्रा

वक्र गति का अतिशय अतिवक्र कहलाता है। अर्थात् ग्रह की वक्र गति निश्चित व सामान्य से अधिक गति में हो तो उसे अतिवक्र कहते हैं।

3. विकला

विकला के स्थान में कुटिला आदि अन्य शब्दों को लेने की इच्छा कुछ आचार्य गण प्रकट करते हैं। विकला का सामान्य अर्थ कला विहीना गतिः (विगताः कलाः यस्याः) इस प्रकार से लिया जा सकता है। ग्रह जब मार्गी गति से वक्री गति में तथा वक्री गति से मार्गी गति में परिवर्तित होता है उस समय कुछ दिन के लिए उसकी गति स्तब्ध हो जाती है। उसी स्थिति को विकला गति कहते है।

अपने मार्ग में स्वाभाविक दिशा में भ्रमण करना मार्गी गति कहलाती है। स्तब्ध होने से तात्पर्य है ग्रह गति में कलादि अवयव स्थानों में भी कोई परिवर्तन नही होना अथवा अत्यन्त कम होना।

4. मन्दा

ग्रह की राशिचक्र में सीमित समय में सीमित परिक्रमाएं होती हैं।इसकी जानकारी हमने सूर्यादि ग्रहों के भगण नामक इकाई में प्राप्त की थी। उन परिक्रमाओं का नाम ही भगण है। ये परिक्रमाएं ग्रह की औसतन गति से मानी जाती है। अर्थात् ग्रह के भगण को भगणकालिक दिनों से भाग देने पर जो लब्धि आयेगी वह ग्रह की औसतन गति होगी। इसी गति को ग्रह की मध्यम गति कहते है। इस मध्यम गति से ग्रह की गति यदि कम हो जाती है तो उसको मन्दगति कहते है।

गति के कारक को उच्च कहा गया है। मन्द गति का कारक मन्दोच्च है। जब मन्दोच्च ग्रह को अपनी और आकृष्ट करता है उस समय ग्रह पृथ्वी से दूरतम स्थान में जाने के कारण भूकेन्द्र में उत्पन्न होने वाली कोणीय गति सामान्य से कम हो जाती है।

5. मन्दतरा

मन्दोच्च के आकर्षण के कारण ग्रह की गति जब अतिशय रूप में मन्द हो जाती है तो उसे मन्दतरा गति कहते हैं।

6. समा

मध्यम गति ही समा गति कहलाती है। जब ग्रह के ऊपर उच्चादि गतिकारकों का प्रभाव नहीं रहता है तब ग्रह अपनी सामान्य गति से भ्रमण करता है।

7. शीघ्रा

समा गति से अधिक गति को शीघ्र गति कहते हैं जो शीघ्रोच्च के अपकर्षण के कारण उत्पन्न होती है। ध्यातव्य विषय यह है कि जब भी उच्च के आकर्षण के प्रभाव में ग्रह आ जाता है तो स्वभावतः उसकी गति मन्द हो जाती है। राशिचक्रस्थ कोणीय मान को भोग करने के लिए पृथ्वी से दूर जाने वाले ग्रहों के लिए अधिक समय लगना ही इसका कारण है।

ग्रह के उच्च का अपकर्षण तब होता है जब ग्रह उच्च से दूर हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि ग्रह नीचासन्न होने पर उस पर उच्च का प्रभाव न होने के कारण उसकी गति अधिक हो जाती है। वास्तव में उच्च से दूर होने के कारण या नीच के आसन्न होने के कारण उस पर उत्पन्न होने वाला आकर्षण या विकर्षण ग्रह गति में परिवर्तन का कारक नहीं होता है। यहाँ पर आचार्यों ने सरल रीति से विषय को समझाने की दृष्टि से भूम्यभिप्रायक कोणीय गति का वर्णन इस प्रकार से किया है।

नीचासन्न ग्रह पृथ्वी के निकटतम स्थान में प्राप्त होने के कारण राशि चक्र के कोणीय विभागों के भोग करने में उसको लगने वाले समय में पर्याप्त मात्रा में कमी आना ही ग्रह की गति बढने का कारण है।

8. शीघ्रतरा

शीघ्र गति का अतिशय वृद्धि ही शीघ्रतरा गति कहलाती है। अर्थात् सामान्य गति से अधिक गति शीघ्र गति तथा शीघ्र से भी शीघ्र शूघ्रतरा गति होती है।

3.4.2 पाँच प्रकार की ग्रह की गति

अब तक ग्रह की आठ प्रकार की गति का वर्णन किया गया। वास्तव में प्रदत्त गतियों में तीन गति अन्य तीन गतियों की अतिशय मात्रा को ही दर्शाते है। अतः गति और अतिशय गति दोनों को एक ही मानने पर ग्रह की कुल पांच प्रकार की गति उत्पन्न होती है।

तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा

ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सातिवक्रगा।।

अतिशीघ्रा और शीघ्रा को शीघ्र गति की श्रेणी में , मन्दा और मन्दतरा को मन्द गति की श्रेणी में तथा वक्रा और अतिवक्रा को वक्र गति की श्रेणी में लेने पर ग्रहों की वास्तविक पांच प्रकार की गति सिद्ध होती है।

* शीघ्रा * मन्दा * समा * ऋज्वी * वक्रा

समा गति से तात्पर्य है बराबर की गति। अर्थात् ग्रह की दैनन्दिन गति में अन्तर न होना। यह स्थिति दो प्राकार की उत्पन्न हो सकती है। ग्रह की गति न ज्यादा न कम होने पर समा गति कह

सकते हैं। यह तो मध्यम गति ही है। दूसरी प्रकार की समा गति है विकला गति। अर्थात् एक से अधिक दिन ग्रह की एक ही गति होना। अत एव पांच प्रकार की ग्रह गति में आचार्य रंगनाथ समा गति को एक मानते है तो सुधाकर द्विवेदी सहित कुछ अन्य आचार्य समा गति के स्थान में विकला गति का ग्रहण करते हैं। किन्तु दोनों में किसी भी मत का ग्रहण करने से स्थिति में कोई अन्तर उत्पन्न नही होता है। अतः ग्रह की पांच प्रकार की गति के अन्तर्गत समा तथा विकला में से किसी एक का ग्रहण स्वीकारा जा सकता है।

3.4.3 बोध प्रश्न

1. ग्रह की कौनसी गति होती है?
2. ग्रह की गति कितनी प्रकार की होती है?
3. ग्रहों की स्वाभाविक गति किस दिशा में होती है?
4. ऋज्वी गति किसे कहते हैं?
5. ग्रह भ्रमण मार्ग का केन्द्र भू केन्द्र है। हाँ या नहीं

3.5 ग्रह गति का साधन

ग्रह गति का साधन ग्रह स्पष्टीकरण के समान ही होता है। औसतन गति को वास्तविक व तत्कालिक गति बनाने की प्रक्रिया उसी प्रसंग में वर्णित है जो ग्रह साधन में भी बताया गया है। ग्रह स्पष्टीकरण में सर्वप्रथम मध्यम ग्रह का साधन किया जाता है। मध्यम ग्रह का साधन ग्रह भगणों के आधार पर किया जाता है। स्पष्टता के लिए सूर्य का एक उदाहरण लेते हैं। सूर्य एक महायुग में 4,32,0000 भगण पूरा करता है। एक महायुग में सावन दिनों की संख्या 157,79,17,828 है। सूर्य के भगणों को सावन दिनों से भाग देने पर एक दिन की सूर्य की गति $59^{'}07^{''}$ विकला प्राप्त होता है। यह सूर्य की औसतन (मध्यम) गति है। महायुग के प्रारम्भ से अभीष्ट दिन तक जितने सावन दिन बीत चुके हैं उनको गत दिन कहते हैं। इन्ही गत दिनों का नाम अहर्गण है। यहाँ पर मध्यम ग्रह का साधन दो प्रकार से किया जाता है।

यथा स्वभगणाभ्यस्तः दिनराशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिग्रहो भवेत्।।

ग्रह के भगण मान को दिनराशि (अभीष्ट दिनपर्यन्त दिन संख्या जिसको अहर्गण कहते है) से गुणाकर महायुगीय सावन दिवसों से भाग देने पर भगणादि मध्यम ग्रह प्राप्त होता है। अर्थात् लब्धि में प्रथमांक भगण , उसके उपरान्त राशि तथा तत्पश्चात् अंश एवं कला प्राप्त होंगे।

$00^{\text{भगण}}/00^{\text{राशि}}/00^{\text{अंश}}/00^{\text{कला}}$

गतदिनों को मध्यम गति से गुणा करने पर भी यही फल उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् मध्यम ग्रह में मध्यम और स्पष्ट ग्रह के अन्तर का संस्कार करने पर स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है। स्पष्ट ग्रह साधन से सम्बन्धित इकाई में ग्रह साधन के बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे। उसी प्रकार से मध्यम गति और स्पष्ट गति का साधन कर संस्कार करने पर ग्रह की स्पष्ट गति उपलब्ध होती है।

3.5.1 बोध प्रश्न

1. औसतन गति का अन्य नाम क्या है?
2. औसतन गति का साधन किस विधि से किया जाता है?
3. औसतन गति किसे कहते है?
4. औसतन गति का क्या प्रयोजन है?
5. औसतन गति वास्तविक गति से भिन्न क्यों होती है?

3.6 सारांश

ग्रह अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। यह एक सामान्य विषय है तथा खगोल का एक साधारण दृश्य घटक है। भूमि के अभिप्राय से ग्रह भूमि की चारों ओर वृत्ताकार कक्षाओं में कोणीय गति से भ्रमण करते हैं तथा उस कोणीय गति के कारण अभीष्समय में ग्रह की राशिचक्र में जो स्थिति होगी उसे ग्रह का स्थान या स्पष्ट ग्रह कहते है। इन्हीं राशिचक्र में स्थित स्पष्टग्रहों की सहायता से काल का साधन करते है यह एक विशेष बात है। ग्रहों के आधार पर काल साधन करने की विशेष बात पर आधारित एक वैदिकवाङ्मय सम्बद्ध विषय है जो ज्योतिष शास्त्र है। ज्योतिष को भाग्य जानने की दृष्टि से आम जनता देखती है। इस ज्योतिष का वास्तविक मुख्य उद्देश्य काल साधन है तथा इस काल साधन कार्य हेतु प्रकल्पित ज्योतिष की शाखा को सिद्धान्त स्कन्ध कहते हैं। विगत कुछ इकाईयों में सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित सामान्य जानकारियों के साथ साथ ग्रहों के भगणों से सम्बन्धित जानकारियाँ भी प्राप्त की हैं।

वर्तमान इकाई में ग्रहगति से सम्बन्धित विवेचन किया गया है। ग्रह की वह गति जो भूमि देखी जाती है इसे ही भूकेन्द्राभिप्रायिक व भूम्यभिप्रायिक ग्रहगति कहते हैं। इसको सापेक्ष भी कह सकते हैं। ग्रहों की भूसापेक्ष स्थिति तथा गति के बारे में इस इकाई में हमने जानकारी प्राप्त की हैं।

पृथ्वी के चारों ओर वृत्ताकार कक्षा में ग्रहों के भ्रमण का जो तथ्य दर्शाया गया है वह भूमि के अभिप्राय से निश्चित रूप से तथ्य है। किन्तु यह तथ्य भूसापेक्ष है। भूसापेक्ष होने के कारण तथा वास्तव में ग्रहों की कक्षा के केन्द्र में भूमि न होने के कारण ही उच्च की कल्पना की गई थी। उच्च

कोई कल्पना नहीं, भूमि से ग्रहकक्षा का दूरतम बिन्दु है। केन्द्र में स्थित पृथ्वी से चारों ओर स्थित कक्षा में यदि दूरतम तथा निकटतम बिन्दुओं की बात आती है तो यह विदित हो जाता है कि ग्रह भूमि के चारों ओर भूमि को केन्द्र बनाकर नहीं भ्रमण कर रहे हैं।

सारांशतः आसमान में चलते चलते ग्रह भूकेन्द्र में जो कोण उत्पन्न करते हैं अथवा भूम्यभिप्राय से राशिचक्र में ग्रहों की जो कोणीय गति उत्पन्न होती है उसे ग्रह गति कहते हैं। यह गति ग्रहकक्षा के पृथ्वी के चारों ओर समान दूरी में न रहने के कारण विलक्षण होती है। इस विलक्षणता के अन्तर्गत ग्रह की आठ प्रकार की गति उत्पन्न होती है। उन आठ प्रकार की गतियों के सादृश्यता के आधार पर विभाजन व वर्गीकरण करने पर पांच प्रकार की ग्रह की गति सिद्ध होती है। इस गति का साधन स्पष्ट ग्रह के साधन के समान ही किया जाता है।

3.7 बोध प्रश्नो का उत्तर

3.3.5

1. क. ग्रह वे आकाशीय पिण्ड है जो सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित दिखते है।
   ख. उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते है जो राशि व नक्षत्रों का ग्रहण करते है।
   ग. उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते है जो भचक्र के पश्चिमाभिमुख परम वेग युत गति के साथ पूर्वाभिमुख गति का धारण करते हैं।
2. राशि चक्र में
3. भचक्र के साथ पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह पूर्वदिशा की ओर लम्बित होते है। इसी पूर्वाभिमुख लम्बन को ग्रह की गति कहते है।
4. शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात
5. ग्रहभ्रमण मार्ग में जो बिन्दु भू केन्द्र से दूरतम बिन्दु व स्थान

3.4.3

1. पूर्वाभिमुखी
2. आठ
3. पूर्व दिशा
4. ग्रह की स्वाभाविक व पूर्वाभिमुख गति
5. नहीं

3.5.1

1. मध्यम गति

2. त्रैराशिक व आनुपातिक

3. एक निश्चित कालखण्ड के लिये प्रदत्त भगणों के आधार पर एक दिन के लिये साधित ग्रह गति को औसतन गति कहते है।

4. वास्तविक व स्पष्ट गति का साधन करने के लिये मुख्य उपकरण के रूप में औसतन गति का प्रयोग किया जाता है।

5. उच्च की आकर्षण तथा विकर्षणों के कारम ग्रह की गति विलक्षण होती है। अतः औसतन और वास्तविक गतियों में अन्तर उत्पन्न होता है।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. कल्पित उदाहरण से गति का साधन करें।
2. मध्यम गति और स्पष्ट गति का अन्तर प्राप्त करने की विधि स्पष्ट करें।
3. उच्च ग्रह गति में विलक्षणता को किस प्रकार से उत्पन्न करता है¿

3.10 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **ग्रह**

जो ग्रहण करता है उसे ग्रह कहते हैं। संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति है ** गृह्णातीति ग्रहः**। **ग्रह उपादाने** इस धातु से ग्रह शब्द उत्पन्न हुआ है।

- **वेध**

सिद्धान्त ज्योतिष में अधिक रूप में प्रयुक्त होने वाला शब्द है वेध। सामान्यतः वेथ शब्द का अर्थ छेदन से लिया जाता है। जैसे कर्णवेध। कान में बाली पहनाने के लिये छेद करने की प्रक्रिया को कर्णवेध कहते है।

किन्तु ज्योतिष में आकाशीय ग्रह तथा उससे सम्बन्धित अन्य स्थान व विशेषताओं का प्रत्यक्ष दर्शन करने की विधि को वेध कहते है।

संस्कृत में **'विध छेदने'** नामक धातु से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। इस धातु का प्रयोग सम्बन्धार्थ में होता है। ग्रह वेध नामक कार्य में आंखों का सम्बन्ध व सम्पर्क आकाशीय पिण्ड या उससे सम्बन्धित पदार्थों से होता है। अतः यहाँ पर वेध प्रक्रिया का अर्थ आंखों से सम्पर्क करने की अर्थ में लिया जा सकता है।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहभ्रमण से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. ग्रहगति के प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
3. ग्रहगति का साधन कीजिये।
4. मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्च को स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 4 भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि विवेचन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भूव्यास परिचय

4.4 स्पष्टभूरिधि विवेचन

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-502 के प्रथम खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक 'भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि विवेचन' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ग्रहों के भगण तथा उनकी गतियों के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि से सम्बन्धित इकाईयों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सामान्यत: भूव्यास का अर्थ है – पृथ्वी का व्यास तथा पृथ्वी की परिधि को 'भूपरिधि' के नाम से जाना जाता है। सिद्धान्त ज्योतिष में इनका ज्ञान आवश्यक है।

अत: आइए अब पृथ्वी के व्यास तथा परिधि से सम्बन्धित सैद्धान्तिक तत्वों का विवेचन इस इकाई में अध्ययन करते हैं।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भूव्यास का अर्थ समझ लेंगे।
- भूव्यास का सैद्धान्तिक पक्ष को जान लेंगे।
- भूपरिधि का विवेचन करने में सक्षम हो सकेगें।
- भूपरिधि का साधन कर सकेगें।
- सिद्धान्त ज्योतिष में भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि को समझा सकेगें।
- भूव्यास से भूपरिधि का ज्ञान कैसे किया जाता है, जान जायेगें।

4.3 भूव्यास विवेचन

'भू' का अर्थ होता है – पृथ्वी एवं तत्सम्बन्धित व्यास को 'भूव्यास' कहा जाता है। पृथ्वी के व्यास एवं मध्यम भूपरिधि के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि –

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु।
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्।।

अर्थात् पृथ्वी का व्यास ८०० के दुगने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है, वह 'पृथ्वी की परिधि' होती है।

यदि पृथ्वी का व्यास 'व' मान लिया जाय तो इसकी परिधि = $\sqrt{व^2 \times १०}$

व× $\sqrt{१०}$ = व × ३.१६२३, जिससे यह सिद्ध होता है कि परिधि व्यास का ३.१६३१ गुना होती है। आजकल यह सम्बन्ध ३.१४१६ दशमलव के चार स्थान तक शुद्ध समझा जाता है जो ३.१६२३ से बहुत भिन्न है, परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तकार को व्यास और परिधि का ठीक-ठीक सम्बन्ध मालूम नहीं था; क्योंकि इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में अर्द्धव्यास और परिधि का अनुपात ३४३८:२१६०० माना गया है, जिससे परिधि व्यास का ३.१४१३६ गुना होता है। इसीलिए इस श्लोक में परिधि को व्यास का $\sqrt{१०}$ सुविधा के लिए माना गया है, जैसे सम्प्रति जब स्थूल रीति से काम लेना होता है तब कोई इसको २२/७ और कोई ३.१४ मानते है और जहाँ बहुत सूक्ष्म गणना करने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ दशमलव के पाँच-पाँच सात सात स्थानों तक इसको शुद्ध लेना पड़ता है।

ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों में परिधि और व्यास सम्बन्ध का मान निम्नलिखित है –

सूर्यसिद्धान्त ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त द्वितीय आर्यभट्ट	व्यास: परिधि १: $\sqrt{१०}$	अर्थात्	व्यास:परिधि १:३.१६२३
प्रथम आर्यभट्ट	२००००:६२८३२		१:३.१४१६
द्वितीय आर्यभट्ट भास्कराचार्य	२२:७		१:३.१४२८
भास्कराचार्य	१२५०:३९२७		१:३.१४१३६
३४३८ कला को त्रिज्या मानने से, जो ब्राह्मस्फुट के अतिरिक्त सभी सिद्धान्तों में पाया जाता है।	६८७६:२१६००		१:३.१४१३६
आजकल के सूक्ष्म गणित से			१:३.१४१५९२७

पृथ्वी का सम्पूर्ण मान भूपरिधि कहलाता है और वह अक्षांश भेद से अलग-अलग होता है। परन्तु सामान्यतया सभी विद्वान लंकादेश के भूमध्य में स्थित होने के कारण उसी देश की

कुवृत्तीयपरिणाह को मध्यम भूपरिधि के रूप में स्वीकार करते हैं। यद्यपि गोल में भूपृष्ठ स्थान कहीं भी हो सकता है, - यथा

भूमौ तिष्ठति यो यत्र पृष्ठस्थानं तदुच्यते।
स्वदेशोऽपि स एवाऽस्य कथ्यते गणितागमे।।

किन्तु व्यवहार में किसी एक प्रदेश को कल्पित मानकर ही भूपृष्ठ का स्थान निर्धारण करने, और गणितादि प्रतिपादित करने की बात दैवज्ञों ने की है। वस्तुत: भूमध्य में लंका तथा उससे $90\text{-}90^0$ अंश पर यमकोटि, रोमकपत्तन, सिद्धपुर, सुमेरू, वडवानल आदि भूपृष्ठस्थ प्रमुख छ: स्थल हैं। इन सभी स्थलों पर लंका को ही भूमध्य में कल्पित मानकर स्थान निर्धारण कर्त्तव्य किया गया है। यथा –

लंका कुमध्ये यमकोटिरस्या: प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्तत: सिद्धपुरं सुमेरू: सौम्येऽथ याम्ये वाडवानलश्च।।
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसंघा और्वे च सर्वे नरका: सदैत्या:।।

आप इस स्थिति को और सरल तरह से समझिये – पृथ्वी के मध्य में लंका, इसके ९०° पूर्व में यमकोटि और ९०° पश्चिम में रोमक पतन नामक स्थान है। इसके १८०° नीचे सिद्धपुर और ९०° उत्तर में सुमेरू उत्तर ध्रुव है तथा ९०° दक्षिण में वाडवानल पुर (दक्षिण ध्रुव) है। ये सभी स्थान भूमध्यस्थ लंका के सापेक्ष कहे गये हैं।

भूगोल के पादों (चतुर्थ भाग) को अंतरित करने वाले स्थानों को छ: गोल वाले कहे जाते है। मेरू पर देवता सिद्ध पुरूषों के साथ रहते हैं तथा दक्षिण ध्रुव पर नरक तथा दैत्य गण निवास करते हैं। जो लोग पृथ्वी पर जहाँ पर भी स्थित है वे अपने आप को पृथ्वी के ऊपर उसके ऊपरी भाग पर ही स्थित समझते हैं तथा दूसरो को अपने नीचे स्थित अनुभव करते हैं। पृथ्वी के चतुर्थ भाग में स्थित सभी लोग पृथ्वी पर आश्चर्य रूप से तिरछे स्थित होते हैं (यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर तो वे उर्ध्व ही होते हैं) । पृथ्वी के आधे भाग के अन्तर पर स्थित मनुष्य परस्पर नीचे सिर करके स्थित होते हैं, जैसे किसी जलाशय के किनारे खड़े होकर जल में देखने से जल में छाया में खड़ा दिखाई देने वाला व्यक्ति बिना किसी परेशानी के स्थित रहता है, उसी प्रकार बिना परेशानी के मनुष्य एक दूसरे के पृथ्वी के अध: भाग में एक दूसरे से नीचे की ओर सिर करके भी स्थित रहते हैं।

भास्कराचार्य और द्वितीय आर्यभट्ट ने दो प्रकार से व्यास और परिधि का सम्बन्ध बतलाया है, एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल और व्यवहारोपोगी। आगे व्यास और परिधि के सम्बन्ध को ⊼ (पाई) चिह्न से सूचित किया जाता है। आजकल प्रथा है कि यदि व्यास १ है तो परिधि ⊼ है, जब

कि π का मान व्यवहार के अनुसार २२/७, ३.१४, ३.१४२,३.१४१६ इत्यादि जैसा आवश्यक हो लिया जा सकता है।

उपर्युक्त श्लोक में 'योजन' का बड़ा महत्व है। आजकल लोग योजन को सामान्यतया चार कोस के बराबर मानते हैं, परन्तु कोस का मान स्वयं स्थिर नहीं है। किसी-किसी प्रान्त में कोस बहुत छोटा होता है और किसी प्रान्त में बहुत बड़ा। इसी प्रकार योजन का भी परिमाण स्थिर नहीं है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में भूपरिधि या भूव्यास के मान भिन्न- भिन्न अंकों में दिये हुए हैं। नीचे दिए गए अवतरणों से प्रकट होता है कि सिद्धान्तों में भूव्यास के मान क्या-क्या दिये हुए है –

पंचसिद्धान्तिका में भूव्यास मान – १०१८ पूर्णांक ६/१० योजन
आर्यभट्ट और लल्ल के मत भूव्यास मान – १०५० योजन
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त - १६०० योजन
सिद्धान्तशिरोमणि – १५८१ पूर्णांक १/२४ योजन
द्वितीय आर्यसिद्धान्त (महासिद्धान्त) – २१०९ योजन
आधुनिक यूरोपीय मत से विषुवद्वृत्तीय – ७९२७ मील
ध्रुवीय - ७९०० मील

इन अंकों से स्पष्ट है कि वराहमिहिर, आर्यभट्ट तथा लल्ल के योजन प्राय: समान हैं और सूर्यसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि के भी योजन प्राय: समान हैं; परन्तु पहले के तीन आचार्यों का योजन इन दोनों के योजन का प्राय: डेढ़ गुना है। इसलिए इन्हीं दो प्रकार के योजनों की तुलना वर्तमान मील से की जायेगी। हमारे सिद्धान्तों में पृथ्वी को बिल्कुल गोल माना गया है जिससे यह भेद नहीं रखा गया कि विषुवद्वृत्तीय भूपरिधि ध्रुवीय भूपरिधि से भिन्न है। इसलिए तुलना के लिए धुवीय भूपरिधि ही लेना उचित होगा क्योंकि आचार्यों ने इसी की नाप से भूपरिधि का परिमाण स्थिर किया था। इसलिए,

आर्यभट्टीय मत से	**सिद्धान्तशिरोमणि के मत से**
१०५० योजन = ७९०० मील	१५८१ योजन = ७९०० मील
इसलिए १ योजन = ७९००/ १०५० मील	इसलिए १ योजन = ७९००/१५८१ मील
= ७.५२ मील	= ५ मील

यदि १ योजन में ४ कोस हो तो

१ कोस = ७.५२/ ४ मील = १.८८ मील इसलिए १ कोस = १/ ४ योजन=१ पूर्णांक१/४ मील

आजकल १ कोस २ मील के समान समझा जाता है इसलिए आजकल का योजन आर्यभट्ट के योजन से बहुत मिलता है। सिद्धान्तशिरोमणि वाला कोस आजकल के (गो-कोस) के कदाचित् समान हो, जो किसी-किसी प्रान्त में अब तक प्रचलित है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. कल्पित उदाहरण से मध्यम भूपरिधि का साधन करें।
2. सूर्यसिद्धान्तीय स्फुटपरिधि का वर्णन कीजिये।
3. विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार योजनात्मक मान को दर्शाइयें।

यहाँ प्रश्न उठता है कि भूपरिधि नापी कैसे गयी? सूर्यसिद्धान्त में इसके लिए कुछ उल्लिखित नहीं है, किन्तु भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि में कहते हैं कि उत्तर दक्षिण रेखा पर स्थित दो स्थानों की दूरी योजनों में नाप कर उन दो स्थानों के अक्षांशों का भी अन्तर निकालना चाहिए। पुन: त्रैराशिक द्वारा यह जानना चाहिये कि जब इतने अक्षांशों में अन्तर होने से दो स्थानों की दूरी इतने योजन होती है तब ३६०° पर क्या होगी? इसकी उपपत्ति नीचे दिए गये क्षेत्र से समझ सकते है -

नीचे दिए गए क्षेत्र में एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर स्थित दो स्थानों (स, सा) का योजनात्मक अन्तर स सा नापना चाहिये। फिर दोनों के अक्षांशान्तर स भ सा कोण को जानना चाहिये।

उ = उत्तरी ध्रुव या सुमेरू। स, सा एक ही उत्तर दक्षिण रेखा के दो स्थान।

स का अक्षांश = < व भ स।

सा का अक्षांश =< व भ सा।

दोनों के अक्षांशों का अन्तर = < स भ सा।

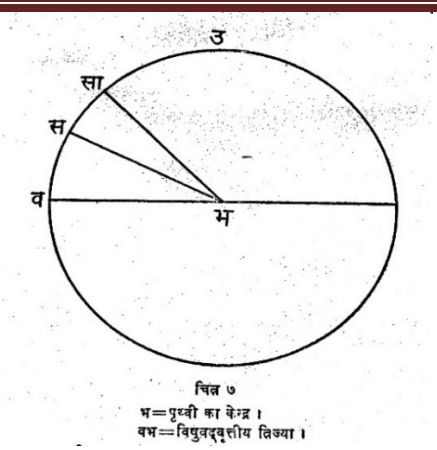

चित्र ७
भ=पृथ्वी का केन्द्र।
वभ=विषुवद्वृत्तीय त्रिज्या।

फिर यह अनुपात करना चाहिए –

< स भ सा: ३६०° : : स सा : भूपरिधि

इसलिए भूपरिधि = $\frac{३६०° \times \text{स सा}}{< \text{स भ सा}}$

भूपरिधि इसी रीति से आजकल भी नापी जाती है; केवल सूक्ष्मयंत्रों के कारण अब अधिक शुद्धतापूर्वक यह काम किया जाता है।

4.4 स्पष्ट भूपरिधि

स्पष्ट भूपरिधि के लिए सूर्यसिद्धान्तकार कहते है –

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तस्फुटो भूपरिधि: स्वकः।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।।
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्य: परिशोधयेत्।
रेखाप्रतीची संस्थाने प्रक्षिपेत् स्वदेशजस्।।

अर्थात् भूपरिधि को (स्वस्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो फल कला में आयेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पश्चिम में हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते हैं।

बीजगणित के अनुसार इन श्लोकों को इस प्रकार प्रकट कर सकते है –

स्फुट परिधि = $\frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ ..... (१)

देशान्तर फल } = $\frac{\text{देशान्तर योजन ग्रह की दैनिक गति कला में}}{\text{स्फुट परिधि}}$ .....(२)

अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह

= लंका की अर्द्धरात्रि के मध्यम ग्रह ± देशान्तर फल ..... (३)

यदि स्थान लंका से पूर्व हो तो ऋणात्मक चिह्न और पश्चिम हो तो धनात्मक चिह्न ग्रहण करना चाहिये।

इसकी उपपत्ति समझने से पूर्व श्लोक में कहे गये लम्बज्या, स्फुट परिधि, देशान्तर इत्यादि को भी जान लेना चाहिये कि ये क्या है?

ज्या – यदि किसी समकोण त्रिभुज के किसी भुज की लम्बाई को उसके कर्ण की लम्बाई से भाग दे दिया जाय तो लब्धि उस भुज के सामने के कोण की ज्या कहलाती है। नीचे चित्र संख्या ८ में स भा भ एक समकोण त्रिभुज है; इसलिए इसके स भ भा कोण की ज्या = स भा / स भ और भ स भा कोण की ज्या भ भा / सभ। समकोण त्रिभुज के कर्ण की लम्बाई किसी भुज की लम्बाई से अधिक होती है; इसलिए किसी भुज के सामने के कोण की ज्या एक से कम होगी इसलिए ज्या दशमलव भिन्न में लिखी जाती है। प्राचीन काल में जब कि दशमलव भिन्न का प्रचार नहीं था कोण की ज्या पूर्णांकों में लिखी जाती थी।

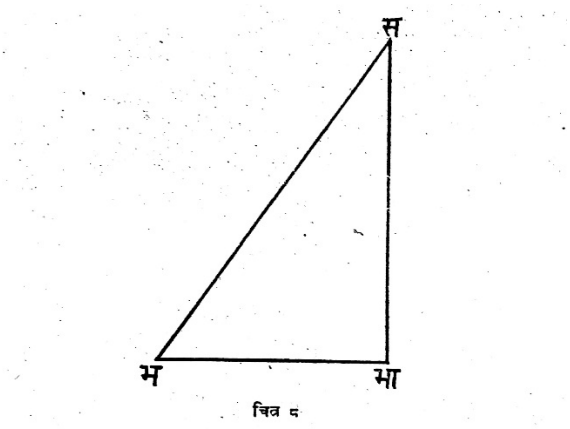

चित्र ८

किसी कोण की ज्या जानने के लिए हमारे सिद्धान्तों में ऐसा वृत्त लिया गया है, जिसकी त्रिज्या (अर्द्धव्यास) ३४३८ इकाईयॉं और परिधि २१६०० इकाईयाँ होती हैं, जिससे एक-एक इकाई एक-एक कला के समान होती है, क्योंकि परिधि एक चक्र के समान होती है जिसमें ३६० अंश अथवा ३६० × ६० = २१६०० कलाएँ होती है। फिर केन्द्र से परिधि तक दो त्रिज्यायें ऐसी खींचते हैं जिनके बीच का कोण उस कोण के समान होता है जिसकी ज्या जानना है तथा त्रिज्या और परिधि के मिलान बिन्दु से दूसरी त्रिज्या पर लम्ब डालते हैं। इस लम्ब की लम्बाई जितनी इकाइयाँ (कलाएं) होती हैं उसी को उस कोण की ज्या कहते हैं। नीचे दिए गए क्षेत्र में अ केन्द्र है; अ आ, अ उ तथा अ ऊ तीन त्रिज्यायें हैं जो अ से परिधि तक खींची गई हैं। उ या ऊ से उ इ या ऊ ई लम्ब अ आ पर डाले गये हैं। त्रिज्या की नाप ३४३८ इकाईयों में मानकर उ इ या ऊ ई को जो नाप इन्हीं इकाईयों में होगी वह उ अ इ कोण ऊ अ ई कोण की ज्या कहलायेगी। जो लोग केवल आजकल की प्रथा से परिचित हैं उन्हें भ्रम हो सकता है; इसलिए उन्हें यह भेद अच्छी तरह समझने का प्रयास करना चाहिए।

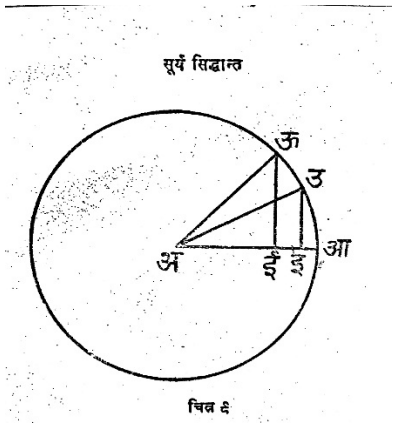

चित्र ६

त्रिज्या का मान ३४३८ इसलिए लिया गया कि जब परिधि कलाओं में विभाजित की जाती है तब त्रिज्या का मान ३४३७पूर्णांक३/ ४ कला आजकल की सूक्ष्म गणना से आता है, जिसका निकटतम पूर्णांक ३४३८ है। आजकल के एक रेडियन में जितनी कलाएँ होती हैं उतनी ही पूर्ण कलाओं के समान त्रिज्या का परिमाण माना गया है।

स्फुट परिधि - भूतल का वह वृत्त जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से समान अन्तर पर दोनों के बीचों बीच होता हुआ भू पृष्ठ को दो समान भागों में बॉंटता है, वह विषुवत् रेखा कहलाता है; विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को उत्तर गोल और दक्षिण वाले को दक्षिण गोल कहते हैं। इस रेखा से आकाशीय ध्रुव क्षितिज पर दिखायी देते हैं। यहाँ पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° होता है।

इसलिए विषुवत् रेखा को निरक्षवृत्त भी कहते हैं। नीचे दिए गए क्षेत्र १० में व वा वि विषुवत् रेखा है। यदि किसी स्थान 'स' से निरक्षवृत्त के समानान्तर स सा सि वृत्त भूतल पर खींचा जाय तो इसके परिमाण को 'स' स्थान की 'स्फुट परिधि' कहते हैं।

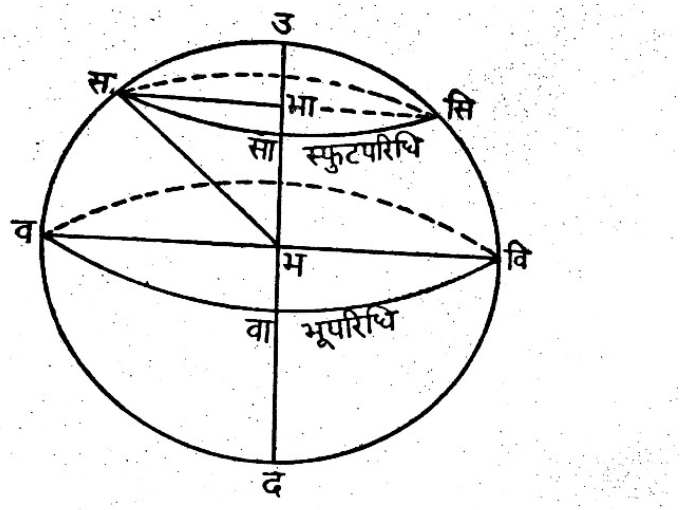

चित्र १०

भ=पृथ्वी का केन्द्र।
उ=पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव (सुमेरु)।
द=पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव (कुमेरु)।
व=विषुवत् रेखा का वह विन्दु जो स के ठीक दक्षिण है।
स=अभीष्ट स्थान; उसवद स स्थान की उत्तर-दक्षिण रेखा।
∠ व भ स=स का अक्षांश।
∠ स भ उ=स का लम्बांश।
उ द=पृथ्वी का अक्ष।
स भ=स से पृथ्वी के अक्ष की दूरी

= स स्थान की लम्बज्या, सिद्धान्तीय पद्धति से

विषुवत् रेखा से जैसे – जैसे उत्तर या दक्षिण जाइयेगा वैसे-वैसे स्फुट परिधि कम होती जाती है यहाँ तक कि ध्रुवों पर स्फुट परिधि शून्य हो जाती है। इसी तरह अक्षांश बढ़ता जाता है और लम्बांश कम होता जाता है और ध्रुवों पर अक्षांश ९०° और लम्बांश शून्य हो जाता है। क्षेत्र से भी स्पष्ट है कि 'स' स्थान की स्फुट परिधि स सा सि की त्रिज्या 'स भा' है जो स की लम्बज्या भी कहलाती है, क्योंकि स का लम्बांश < स भ उ है जिसके सामने की भुज स भा है।

रेखागणित से यह सिद्ध है कि दो वृत्तों की परिधियों में वही अनुपात होता है जो उनकी त्रिज्याओं या व्यासों में होता है, इसलिए

व भ : स भा :: व वा वि : स सा सि

इसलिए स सा सि = व वा वि × स भा / व भ = भूपरिधि × लम्बज्या/ त्रिज्या, जब त्रिज्या ३४३८ हो ओर लम्बजया का मान सिद्धान्तीय पद्धति के अनुसार कलाओं में हो तो यदि आजकल की प्रथा

के अनुसार स्फुट परिधि निकालना हो तो स सा सि = भूपरिधि × लम्बज्या जबकि लम्बांश की ज्या दशमलव में दी हुई हो क्योंकि इस रीति से लम्बज्या = स भा/ सभ =

सभा / वभ।

आचार्य भास्कराचार्य स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में भूपरिधि के बारे में बतलाते हुए कहते है कि –

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधि: सप्तांगनन्दाब्धय ४९६७

स्तद्व्यास: कुभुजंगसायकभुवो १५८१ ऽथ प्रोच्यते योजनम्।।

याम्योदक्पुरयो: पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांश हृत्।

तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्।।

अर्थात् आचार्य ने भूपरिधि ४९६७ योजन तथा उसका व्यास १५८१ योजन बताया है। याम्योदकपुर (रेखापुर) और स्वपुर (स्वस्थान) के अक्षांश के अन्तर को परिधि से गुणा करके ३६० अंश से विभक्त करने पर दोनों स्थानों के अन्तर योजन होते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. सूर्यसिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का व्यास कितना योजन है?

   क. १२०० योजन ख. १४०० योजन ग. १६०० योजन घ.१०००

2. लंका कहाँ स्थित है?

   क. भूमध्य में ख. रेखादेश में ग. भूपृष्ठ पर घ. निरक्ष देश में

3. लंका के ९०° पूर्व में कौन सा पुर स्थित है?

   क. रोमकपत्तन ख. सिद्धपुर ग. यमकोटि घ. सुमेरू

4. आधुनिक मत में π का मान कितना है?

   क. २२/७ ख. २२/६ ग. २२/५ घ. २२/८

5. $\frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} = ?$

   क. भूपरिधि ख. मध्यम भूपरिधि ग. स्पष्टभूपिरिधि घ. कोई नहीं

6. विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को क्या कहते है ?

   क. दक्षिण गोल ख. उत्तर गोल ग. पश्चिम गोल घ. पूर्व गोल

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि 'भू' का अर्थ होता है – पृथ्वी एवं तत्सम्बन्धित व्यास को 'भूव्यास' कहा जाता है। पृथ्वी के व्यास एवं मध्यम भूपरिधि के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्।।

अर्थात् पृथ्वी का व्यास ८०० के दुगने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है, वह 'पृथ्वी की परिधि' होती है।

भूपरिधि को (स्वस्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो फल कला में आयेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पश्चिम में हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते हैं।

4.6 बोध प्रश्नो का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. ग
2. क
3. ग
4. क
5. ग
6. ख

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ0 रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद।
2. सिद्धान्तशिरोमणि, टिकाकार - सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

5. सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा – प्रोफेसर विनयकुमारपाण्डेय, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

4.8 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **भूव्यास**

भू का अर्थ पृथ्वी होता है। तथा उसके केन्द्र से दोनों प्रान्त तक की ओर जाने वाली (दक्षिणोत्तर) रेखा व्यास कहलाती है। आधुनिक मतानुसार पृथ्वी का व्यास को हम २२/७ के रूप में जानते हैं। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है।

- **भूपरिधि**

पृथ्वी के चारों और का सम्पूर्ण मान को हम भूपरिधि के नाम से जानते हैं। भास्कराचार्य के अनुसार भूपरिधि का मान ४९६७ होता है।

- **त्रिज्या**

व्यास का आधा त्रिज्या होता है।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूव्यास से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. भूपरिधि का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. स्पष्ट भूपरिधि का साधन कीजिये।
4. भूव्यास और परिधि में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 5 भूगोल स्वरूप विवेचन

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 भूगोल परिचय

5.4 भूगोल स्वरूप विवेचन

5.5 सारांश

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम.ए. ज्योतिष पाठ्यक्रम के प्रथम सेमेस्टर के द्वितीय पत्र MAJY-502 के प्रथम खण्ड की अन्तिम और पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक 'भूगोल स्वरूप विवेचन' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ग्रहों के भगण, गति, भूव्यास एवं भूपरिधि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप भूगोल स्वरूप से सम्बन्धित विषय का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सामान्यत: भूगोल का अर्थ पृथ्वी के गोल होने से है। सैद्धान्तिक एवं भौगोलिक स्थिति के अनुसार हम भूगोल स्वरूप को इस इकाई में समझेंगे।

अत: आइए अब पृथ्वी के गोलत्व से सम्बन्धित सैद्धान्तिक तत्वों का विवेचन इस इकाई में अध्ययन करते हैं।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भूगोल को परिभाषित कर सकेंगे।
- भूगोल स्वरूप को जान लेंगे।
- भूगोल की स्थिति को समझ सकेगें।
- भूगोल की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में समर्थ हो जायेंगे।
- भूगोल के गोलीय स्वरूप को समझ जायेंगे।

5.3 भूगोल परिचय

सामान्यतया भूगोल का अर्थ पृथ्वी के गोलत्व से है। ज्योतिषशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में भू (पृथ्वी) का स्वरूप बतलाते हुए कहते है कि –

भूमे: पिण्ड: शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैवृत्तो वृत: सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधार: स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्।।
सर्वत: पर्वतरामग्रामचैत्यचयैश्चित:।
कदम्बकुसुमग्रन्थि: केसरप्रसरैरिव।।

अर्थात् मिट्टी, वायु, जल, आकाश से युक्त तेजोमय वृत्ताकार पृथ्वी चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरू, शनि तथा नक्षत्र की वृत्ताकार कक्षाओं से आवृत्त होकर बिना किसी अन्य आधार के स्वशक्ति से आकाश में स्थित है। उसके पृष्ठ के ऊपर जगत विद्यमान है। इस पर देवता, मानव, असुर सहित विश्व सदा स्थित हैं। सभी ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, देवस्थान आदि स्थित हैं, जिस प्रकार कदम्ब पुष्प ग्रंथि में तिर्यक (उर्ध्व) केसर लगी रहती है।

गोल परिभाषा में भी –

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खे स्थित:।
पृथुत्वात् समवद् भाति चलोऽप्यचलवत् तथा।।
आवृत्तोयं क्रमाच्चन्द्र- बुध-शुक्राऽर्क-भूभुवाम्।
गोलैजीवार्किभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितै:।।

अर्थात् गेन्द के समान गोल होने के कारण इस भू-पिण्ड को 'भूगोल' कहते हैं। यह भूगोल (भूमि गोल) स्वशक्ति (अपनी शक्ति) से निराधार आकाश में स्थित है। विशाल वृहद् होने के कारण देखने में समतल एवं चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। यह भूगोल क्रमश: चन्द्र-बुध-शुक्र-रवि-भौम-गुरु-शनि एवं नक्षत्र गोल के द्वारा ऊर्ध्वोर्ध्वस्थ आवृत्त है अर्थात् पृथ्वी के ऊपर चन्द्र, पुन: ऊपर बुध आदि जानना चाहिए।

पृथ्वी में स्वल्प गति होने के कारण उसे अचल कहा गया है। 'वृत्तस्य नवतिर्भाग दण्डवत् परिदृश्यते' के आधार पर अर्थात् पृथुत्वात् समतल दिखायी पड़ती है। भूगोल के चारों तरफ ऊपर- ऊपर क्रमश: भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि और नक्षत्रों के मण्डल हैं।

पुराणों के आधार पर पृथ्वी की आधार परम्परा और उसका निराकरण –

मूर्तो धर्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था।
अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्ति: किमाद्ये किं नो भूमे: साष्टमूर्तेश्च मूर्ति:।

अर्थात् यदि हम मानते हैं कि मूर्त रूप पृथ्वी को कोई धारण करने वाला धर्ता है तो उस धर्ता को भी धारण करने वाला अन्य दूसरा धर्ता होगा, इसी प्रकार उसको भी धारण करने वाला कोई और अन्यधर्ता होगा। इस प्रकार धारक और धार्य की स्थिति की कल्पना में अन्त में यही मानना पड़ेगा कि कोई अवस्था की स्थिति है जहाँ अन्तिम धारक स्वशक्ति से ही स्थित है तथा उसको धारण करने वाला कोई नहीं है। अत: धारण करने वाली कल्पना सही नहीं है। भूमि का कोई अन्य आधार नहीं है। ऐसा मानने से उसका निराधार स्थिति रहना ही भाव है। शेष नाग आदि नामक ईश्वर अंश की अन्तरिक्ष में अवस्थित होने के लिए युक्ति कल्पित की है। भूमि भी उसी भाव से युक्त होने से भगवान

अष्टमूर्ति शिव की भाँति शक्ति कल्पित की गई है जो स्वयं शक्ति का केन्द्र है। अत: यह भूमि, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश सूर्य और चन्द्र के साथ यजमानात्मक महेश्वर की मूर्ति के समान शरीर धारण करके ईश्वर मूर्ति की भाँति अन्तरिक्ष में अवस्थित है। इस प्रकार शक्ति कल्पना की युक्ति का भाव है।

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुति: के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तय:।।
आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्तया।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

जिस प्रकार अग्नि और सूर्य में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता है, जल में तरलता है, पाषाण में कठोरता है, वायु में गति है, ये सब स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। उसी प्रकार पृथ्वी में अचलता अर्थात् स्थिरता का गुण स्वाभाविक (प्राकृतिक) है। इस विचित्र गुण के कारण यह स्थिर रह सकती है।

पृथ्वी में अपनी आकर्षण शक्ति के कारण, आकाश में स्थित भारी पदार्थ पृथ्वी की और स्वशक्ति से आकर्षित होकर उस पर गिरते हुए दिखायी देते हैं। लेकिन यह पृथ्वी चारों ओर से आकाश से घिरी हुई होने के कारण कहाँ पर गिरेगी? अर्थात् यह अपने ही स्थान पर स्थित है, अपने विचित्र स्वाभाविक गुण के कारण। अत: पृथ्वी की इस आकर्षण शक्ति से भूमि का अध:पतन और आकाश के नीचे स्थिति से नीचे गिरने की शंका निराधार है।

भूगोल समता निराकरण –

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणि: क्षिते:।
उपरि दूरगतोपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते।।
यदि निशाजनक: कनकाचल: किमु तदन्तरग: स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिणभागके।।

पुराणों में पृथ्वी को दर्पण के समान समतल कहा गया है। उसके मध्य में मेरु पर्वत कहा है तथा उसके चारों ओर जम्बूद्वीप एक लाख योजन व्यास का कहा गया है तथा उसके बाहर चारों ओर एक लाख योजन प्रमाण का क्षार सागर कहा है और उसके चारों ओर दो लाख योजन का अन्यदीप कहा गया है। उसके बाहर समुद्र फिर अन्य द्वीप, फिर उस द्वीप से द्विगुणित द्वीप, फिर समुद्र से दुगना समुद्र। इस प्रकार सातवें पुस्कर द्वीप के मध्य में वलयाकार मानस उत्तर पर्वत है, उसके शिखर के ऊपर रवि के रथ का चक्र एक लाख योजन दूरी पर विषुवद्दिन में उत्तर गोल में उत्तर की ओर तथा दक्षिण गोल में दक्षिण की ओर भ्रमण करता है।

उपरोक्त पुराणोक्त कथन का आचार्य युक्ति –युक्त खण्डन करते हुए कहते हैं कि यदि दर्पण के समान भूमि समतल होती और उसके ऊपर से बहुत दूर से सूर्य भ्रमण करता तो सूर्य सदा उदित अवस्था में ही प्राणियों को दर्श होता जैसे देवताओं को मेरु से सूर्य सदा उदित दिखता है। यदि मेरु पर्वत से अन्तर्हित (आच्छादक) रवि होता तो मेरु क्यों नहीं दिखाई देता अर्थात् वह दिखाई देना चाहिए। यदि मेरु के तट से रवि उदित होता है तो पूर्व दिशा से उत्तर की ओर ही सूर्योदय होगा तो फिर मेरु के दक्षिण के भाग में वह उदित होता हुआ दिखाई कैसे देगा। अत: भूमि के समतल होने की बात इस प्रकार उपपन्न नहीं होती है।

भू समतलत्व –

समो यत: स्यात् परिधे: शतांश: पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यत: सा।।

ज्योतिष के आचार्यों का कथन है कि किसी वृत्त का सौवाँ भाग समतल वत दृष्टिगोचर होता है। अत: पृथ्वी परिधि का भी सौवाँ भाग इसी प्रकार समतलवत दिखाई देता है। इसी प्रकार मनुष्य उसके पृष्ठ पर स्थित होकर सामने देखते हैं तो उन्हें पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग दूर तक समतल ही दिखता है। अत: उन्हें पृथ्वी के समतल होने का आभास होता है लेकिन वह समतल नहीं होती।

भूपरिधि प्रमाण –

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्षविश्लेषलवैस्तदा किम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरूक्तं परिधे: प्रमाणम्।

अर्थात् निरक्ष देश (जहॉ का अक्षांश शून्य हो) स्वदेश स्थान पृथ्वी पर जैसे-जैसे दक्षिण की ओर होता है वैसे-वैसे खस्वस्तिक विषुवद् वृत्त से नत होता जाता है। उन दोनों अर्थात् निरक्षदेश तथा स्वस्थान का अन्तर 'अक्षांश' होता है। यह निरक्षदेश से पृथ्वी पर फैली हुई योजन दूरी, अनुपात से प्राप्त होता है। किसी स्थान के अक्षांश ज्ञात करके उससे उत्तर की ओर अन्य एक स्थान ज्ञात करना चाहिए। फिर उनके अन्तरांशों के पुरान्तर योजन का अनुपात इस प्रकार करना चाहिए कि यदि इतने अन्तरांश में इतने पुरान्तर योजन प्राप्त होते हैं तो चक्रांश (३६०°) में कितने होंगे? प्राप्त लब्धि फल भूपरिधि योजन होगा।

भूगोल में स्थानों का निवेश -

लंका कुमध्ये यमकोटिरस्या: प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्तत: सिद्धपुरं सुमेरू: सौम्येऽथ याम्ये वाडवानलश्च।।

कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसंघा और्वे च सर्वे नरका: सदैत्या:।।
यो तत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितं च।
स मन्यतेऽत: कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ये तिर्यगिवामनन्ति।।
अध: शिरस्का: कुदलान्तरस्थाश्छायामनुष्या इव नीरतीरे।
अनाकुलास्तिर्यगध: स्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र।।

आप इस स्थिति को और सरल तरह से समझिये – पृथ्वी के मध्य में लंका, इसके ९०° पूर्व में यमकोटि और ९०° पश्चिम में रोमक पतन नामक स्थान है। इसके १८०° नीचे सिद्धपुर और ९०° उत्तर में सुमेरू उत्तर ध्रुव है तथा ९०° दक्षिण में वाडवानल पुर (दक्षिण ध्रुव) है। ये सभी स्थान भूमध्यस्थ लंका के सापेक्ष कहे गये हैं।

भूगोल के पादों (चतुर्थ भाग) को अंतरित करने वाले स्थानों को छ: गोल वाले कहे जाते है। मेरू पर देवता सिद्ध पुरूषों के साथ रहते हैं तथा दक्षिण ध्रुव पर नरक तथा दैत्य गण निवास करते हैं। जो लोग पृथ्वी पर जहाँ पर भी स्थित है वे अपने आप को पृथ्वी के ऊपर उसके ऊपरी भाग पर ही स्थित समझते हैं तथा दूसरो को अपने नीचे स्थित अनुभव करते हैं। पृथ्वी के चतुर्थ भाग में स्थित सभी लोग पृथ्वी पर आश्चर्य रूप से तिरछे स्थित होते हैं (यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर तो वे उर्ध्व ही होते हैं) । पृथ्वी के आधे भाग के अन्तर पर स्थित मनुष्य परस्पर नीचे सिर करके स्थित होते हैं, जैसे किसी जलाशय के किनारे खड़े होकर जल में देखने से जल में छाया में खड़ा दिखाई देने वाला व्यक्ति बिना किसी परेशानी के स्थित रहता है, उसी प्रकार बिना परेशानी के मनुष्य एक दूसरे के पृथ्वी के अध: भाग में एक दूसरे से नीचे की ओर सिर करके भी स्थित रहते हैं।

अभ्यास प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

1. यह भूमिगोल ..... से निराधार आकाश में स्थित है।
2. ग्रहकक्षा क्रम में बुध के बाद ..... की कक्षा है।
3. जम्बूद्वीप का व्यास ..... योजन है।
4. पुराणों में पृथ्वी को ..... समतल कहा गया है।
5. लंका ..... स्थित है।
6. किसी वृत्त का ..... भाग समतल वत दिखाई पड़ता है।

द्वीपों एवं समुद्रों का स्थान –

भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्या:।
अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेश:।।
लवणजलधिरादौ दुग्धसिन्धुश्च तस्मादमृतममृतरश्मि: श्रीश्च यस्माद्बभूव।
महितचरणपद्म: पद्मजनमादिदेवैर्वसति सकलवासो वासुदेवश्च यत्र।।
दध्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्य:।
स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽसौ पाताललोका: पृथिवीपुटानि।।
चंचत्फणामणिगणांशुकृतप्रकाशा एतेषु सासुरगणा: फणिनो वसन्ति।
दीव्यन्ति दिव्यरमणीरमणीयदेहै: सिद्धाश्च तत्र च लसत्कनकावभासै:।।
शाकं तत: शल्मलमत्र कौशं क्रोचं च गोमेदकपुष्करे च।
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति।।

भूमि के उत्तरार्ध भाग में क्षार समुद्र के उत्तर दिशा में जम्बूद्वीप की स्थिति आचार्यों द्वारा बतलायी गयी हैं। इसके दूसरे अर्धभाग में अर्थात् जहाँ क्षीर सागर तथा जम्बूद्वीप के दक्षिण की ओर छ: द्वीप स्थित हैं, लवण (नमकीन) समुद्र से आगे दुग्ध समुद्र है जिसमें से अमृत (सदा स्थित) और अमृत रश्मि चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। यहीं पर क्षीर सागर पर पद्म चरण पूज्य भगवान पद्म जन्मा ब्रह्मा तथा अन्य देवता और सर्वव्यापी भगवान परब्रह्म विष्णु भी विराजमान रहते हैं।

दधि,घृत,इक्षु रस, मद्य और मधुर जल के अन्य पाँच सागर हैं तथा छठा दुग्ध सागर व सातवाँ क्षीर सागर मिलाकर सात सागर आचार्य नहे कहे हैं। स्वादु जल सागर के अन्दर बडवानल स्थित रहता है। पाताल लोक पृथ्वी के अन्दर स्थित हैं। फणों को हिलाने वाले मणिधारी नाग अपने फणों में प्रकाश से युक्त मणियों से पाताल में प्रकाश रहता है। शाक, शाल्मल, कौश, क्रौंच तथा गोमेदक और पुष्कर द्वीप दो-दो समुद्रों के बीच में स्थित है। इस प्रकार पृथ्वी पर सात द्वीप स्थित है। मेरू पृष्ठ पर स्थित देवता, मेरू पर रात्रि के अभाव के समय जब उनकी काम इच्छा होती है तब स्वर्णक्रान्ति युक्त रमणीय देह वाली बालायें तथा वे सिद्धगण तथा देवता परस्पर क्रीड़ा में रत होते हैं। ये बालायें निज काम भाव की शान्ति के लिए स्वर्ग से आकर क्रीडा करती हैं।

भूगोलार्ध के उत्तर की ओर जम्बूद्वीप है इससे क्षीरसागर की संधि निरक्षदेश है। वहाँ पर रोमक, सिद्धपुर, यमकोटि आदि चार नगर भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर अर्थात् चारों दिशाओं में कहे गये हैं। इन सभी चारों नगरों के उत्तर दिशा की ओर मेरू है। लंका के उत्तर में हिमवान नामक पर्वत पूर्व से पश्चिम तक समुद्र में फैला हुआ है। इसके उत्तर में निषध नामक पर्वत है।

इन पर्वतों के मध्य में द्रोणि देश, वर्ष संज्ञक है जिसके आरम्भ में भारतवर्ष है जिसके उत्तर में किन्नवर्ष संज्ञक तथा इसके उत्तर में हरिवर्ष संज्ञक प्रदेश है। इसी प्रकार सिद्धपुर के उत्तर की ओर श्रृंगवान नाम का पर्वत है, उससे उत्तर में श्वेत गिरि पर्वत, उससे उत्तर में नीलगिरि पर्वत है। इन सभी का विस्तार समुद्र पर्यन्त है। इन पर्वतों के मध्य सर्वप्रथम कुरूवर्ष है इसके उत्तर में हिरण्मय है, इसके उत्तर में रम्यक वर्ष है।

उस यमकोटि पुर के उत्तर की ओर माल्यवान नाम का पर्वत है। यह निषध और नील पर्वत तक फैला हुआ है। इसके और समुद्र के मध्य में भद्राश्व वर्ष है। इसी प्रकार रोमक पर्वत के उत्तर में गन्धमादन है, इसके तथा समुद्र के बीच में केतुमाल नगर है।

आर्यभट्ट के मतानुसार पृथ्वी का गोलत्व -

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।।

इस श्लोक में आर्यभट ने यह स्पष्ट किया है कि नक्षत्र मण्डल स्थिर है तथा पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है।

जिस प्रकार से नाव में बैठकर कोई मनुष्य पूर्व की ओर जाने पर व्यक्ति को अचल वस्तुऐं विपरीत दिशा में जाती हुई दिखती है, उसी प्रकार अचल नक्षत्रमण्डल को लङ्का से पश्चिम की ओर जाते देखते है

शशिराशयष्ठ चक्रं तेंऽशकला योजनानि यवस्त्रिगुणाः।
प्राणेनैति कलां भं ख, युगांशे ग्रहजवो भवांशेऽर्कः।।

इस श्लोक में आचार्य आर्यभट ने प्राणेनैति कलां भं ख से यह स्पष्ट कर दिया है कि पृथ्वी प्राणेन अर्थात् एक प्राण कालान्तर में एक चक्रकला घूमती है।

वैदिक मत से पृथ्वी का परिभ्रमण -

पश्चिम में 15वीं शताब्दी में गैलिलियो के समय तक धारणा रही कि पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य उसका चक्कर लगाता है, परन्तु आज से लगभग 1500 वर्ष पूर्व हुए आर्यभट ने प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। वेदों में लिखा है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और उसी सूर्य के आकर्षण के कारण अपने मार्ग से भटक नहीं सकती। 27 सूर्य अर्थात् नक्षत्रों की परिक्रमा पृथ्वी कितने दिनों में करती है, इसका उत्तर ऋग्वेद इस प्रकार से देता है –

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत। तस्मिन् त्साकं त्रिशता न

शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलाशः।।[1]

भावार्थ – (चक्रम्) यहां वर्ष ही चक्र है, क्योकिं यह रथ के पहिया के समान क्रमणः अर्थात् पुनः पुनः घूमता रहता है। उस चक्र में (द्वादश + प्रधयः) जैसे चक्र में छोटी –छोटी अरे प्राधि = कीलें हैं, वैसे ही वर्ष में बारह मास हैं। (त्रीणि + नभ्यानी) उसके (पृथ्वी के) परिक्रमण के दौरान कोई भाग सूर्य के नजदीक आने - दूर जाने से तीन ऋतुऐं होती हैं। (क उ तत् चिकेत) उस तत्त्व को कौन जानता है? (तस्मिन् साकं शङ्कवः) उस वर्ष में कीलों सी (त्रिशता + षष्टिः) 300 और 60 दिन (अर्पिता) स्थापित है। (न + चलाचलाशः) वे 360 दिन दिन रूप कीलें कभी विचलित होने वाली नहीं हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि एक वर्ष में 360 दिन होते हैं।

जिस पृथ्वी पिण्ड पर हम सभी स्थित हैं, वह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाती है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने का जो मार्ग है उसे क्रान्ति वृत्त कहते है। पृथिवी के मध्य का जो सबसे बडा पूर्वापर वृत्त है, उसे नाडीवृत्त, विषुवद्वृत्त, भूमध्यरेखा या आङ्ग्लभाषा में 'इक्वेटर' कहा जाता है। उत्तरीध्रुव से 90 अंश दक्षिण और दक्षिणी ध्रुव से 90 अंश उत्तर की ओर जो कल्पित पूर्वापर वृत्त है, उसी का नाम विषुवदवृत्त है। यदि पृथ्वी सदा इस विषुवदवृत्त पर ही घूमती तो दिन-रात सदा वराबर रहते। 12 घण्टे की रात व 12 घण्टे का दिन होता, परन्तु ऐसा है नहीं। पृथ्वी सूर्य से दक्षिण भाग में नीचे की ओर लगभग 24 अंश तक चली जाती है, इसी तरह सूर्य से उपर उत्तर की ओर लगभग 24 तक चली जाती है। इससे 24 अंश उंचा और 24 अंश नीचा 48 अंश का एक अण्डाकार वृत्त बन जाता है, उसपर पृथ्वी घूमती है, इसी का नाम क्रान्तिवृत्त है। यही कारण है कि दिन रात बराबर नहीं होते हैं। पृथ्वी घूमते घूमते जब सौर विषुव पर आती है तो इस दिन रात-दिन बराबर होते है। ऐसी स्थिति वर्ष में दो बार ही आती है। अतः कोशकार कहते है –

"समरात्रिन्दिवे काले विषुवद् विषुवं च तत्" इति।

सूर्य के विषुवत् से जो दक्षिण भाग है वह दक्षिण गोल कहलाता है, और उत्तरभाग उत्तर गोल कहलाता है। पृथिवी दक्षिण-गोल से जिस दिन उत्तर गोल में प्रविष्ट होती है। उस दिन दिन-रात बराबर होते हैं। एवं जिस दिन उत्तर से दक्षिण गोल में प्रविष्ट होते हैं, उस दिन भी रात दिन बराबर होते हैं। 6 महिने पृथ्वी उत्तर गोल में रहती है, 6 महीने दक्षिण गोल में रहती है। क्रान्तिवृत्त और विषुवत वृत्त के सम्पात की जो गति है उसी को अयन बिन्दु का चलन कहते है। यह सम्पात भी दो स्थानों पर होता है, उन सम्पात बिन्दुओं को राहु-केतु कहा जाता है। ये दोनों सम्पात १. शारद सम्पात और २. वासन्त सम्पात नाम से प्रसिद्ध है। जिस दिन (२१ मार्च को चैत्र महिने में) वासन्त सम्पात होता है

1 ऋग्वेद 1-164-48

और २३ सितम्बर को शारद सम्पात होता है उस दिन दिन-रात बराबर होते है। इसी प्रकार २२ जून को दिन सवसे बडा होता है एवं २२ दिसम्बर को दिन सबसे छोटा होता है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरूदक्स्थं ..... ?
   क. जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्या: ख. रोमकं ग. बड़वानलम् घ. क्षारसिन्धु
2. पृथ्वी पर प्रधानतया द्वीपों की संख्या कितनी है?
   क. 2 ख. 5 ग. 7 घ. 9
3. लंका के उत्तर में कौन सा पर्वत स्थित है?
   क. गन्धमादन ख. हिमवान ग. माल्यवान घ. नील
4. 'भानि' शब्दस्य कोऽर्थ: ?
   क. नक्षत्रम् ख. राशि ग. भूमि घ. भूगोलम्
5. पृथ्वी जब उत्तर से दक्षिण या दक्षिण से उत्तर गोल में प्रविष्ट करती है, तो उस दिन होता है–
   क. दिन बड़ा रात्रि छोटी ख. दिन-रात बराबर ग. रात्रि बड़ी और दिवा छोटी
   घ. कोई नहीं
6. सर्वाधिक बड़ा दिन कब होता है ?
   क. २२ जुलाई ख. २२ जून ग. २२ दिसम्बर घ. २२ मई

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सामान्यतया भूगोल का अर्थ पृथ्वी के गोलत्व से है। ज्योतिषशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में भू (पृथ्वी) का स्वरूप बतलाते हुए कहते है कि अर्थात् मिट्टी, वायु, जल, आकाश से युक्त तेजोमय वृत्ताकार पृथ्वी चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरू, शनि तथा नक्षत्र की वृत्ताकार कक्षाओं से आवृत्त होकर बिना किसी अन्य आधार के स्वशक्ति से आकाश में स्थित है। उसके पृष्ठ के ऊपर जगत विद्यमान है। इस पर देवता, मानव, असुर सहित विश्व सदा स्थित हैं। सभी ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, देवस्थान आदि स्थित हैं, जिस प्रकार कदम्ब पुष्प ग्रंथि में तिर्यक (उर्ध्व) केसर लगी रहती है। गेन्द के समान गोल होने के कारण इस भू-पिण्ड को

'भूगोल' कहते हैं। यह भूगोल (भूमि गोल) स्वशक्ति (अपनी शक्ति) से निराधार आकाश में स्थित है। विशाल वृहद् होने के कारण देखने में समतल एवं चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। यह भूगोल क्रमश: चन्द्र-बुध-शुक्र-रवि-भौम-गुरु-शनि एवं नक्षत्र गोल के द्वारा ऊर्ध्वोर्ध्वस्थ आवृत्त है अर्थात् पृथ्वी के ऊपर चन्द्र, पुन: ऊपर बुध आदि जानना चाहिए।

पृथ्वी में स्वल्प गति होने के कारण उसे अचल कहा गया है। 'वृत्तस्य नवतिर्भाग दण्डवत् परिदृश्यते' के आधार पर अर्थात् पृथुत्वात् समतल दिखायी पड़ती है। भूगोल के चारों तरफ ऊपर- ऊपर क्रमश: भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि और नक्षत्रों के मण्डल हैं।

5.6 बोध प्रश्नो का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 के उत्तर

1. स्वशक्ति से
2. शुक्र
3. एक लाख
4. दर्पण के समान
5. भूमध्य में
6. 100 वाँ भाग

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. क
2. ग
3. ख
4. क
5. ख
6. ख

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त., महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ0 रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद।
2. सिद्धान्तशिरोमणि, टिकाकार - सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. ऋग्वेद 1-164-48

5.8 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **भूगोल**

भू का अर्थ पृथ्वी होता है। गेन्द के समान गोल होने के कारण भू-पिण्ड को 'भूगोल' कहते हैं।

- **निरक्ष प्रदेश**

निरक्ष का अर्थ होता है – अक्षांश रहित अर्थात् जिस स्थान का अक्षांश शून्य हो, उसे निरक्ष प्रदेश कहते है। यथा – लंका।

- **त्रिज्या**

व्यास का आधा त्रिज्या होता है।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूगोल से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. भूगोल का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. विभिन्न मतानुसार भू गोलत्व का प्रतिपादन कीजिये।

खण्ड - 2
काल विवेचन

इकाई - 1 काल स्वरूप

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 काल: परिचय, परिभाषा एवं प्रकार
1.3.1 काल: व्युत्पत्ति एवं अवयव
1.4 विभिन्न मत में काल स्वरूप
1.4.1 आचार्य भास्कर मतेन काल प्रवृत्ति
1.4.2 पुराणों में काल की महिमा
1.4.3 श्रीमद्भगवद्गीता में काल वर्णन
1.4.4 पाश्चात्य मतेन काल गणना
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–502 के द्वितीय खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – काल स्वरूप। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने सिद्धान्त ज्योतिष, ग्रहभगण, भूव्यास- भूपरिधि तथा भूगोल का अध्ययन कर लिया हैं। अब आप काल स्वरूप का अध्ययन करने जा रहे है।

काल सृष्टि-संचालन का मूल है। काल सापेक्ष ही चराचर प्राणी भूसापेक्ष जीवनयापन करते है, यह सर्वविदित है। कलयति लोकान इति काल:। काल नियामक होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। ज्योतिषशास्त्रोक्त काल का उल्लेख इस पाठ में किया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप काल से परिचित हो सकेंगे तथा उसके मूलभूत तथ्यों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ❖ बता सकेंगे कि काल किसे कहते है।
- ❖ समझा सकेंगे कि काल क्या हैं।
- ❖ काल के विभिन्न स्वरूप को समझ लेंगे।
- ❖ ज्योतिषशास्त्रोक्त काल के बारे में जान लेंगे।
- ❖ काल की महिमा का अवबोधन हो जायेगा।

1.3 काल: परिचय, परिभाषा एवं प्रकार

काल अनन्त और अनादि होने के कारण अनिर्वचनीय है। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध कर देना अत्यन्त सरल नहीं है। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है। ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।'' कहीं-कहीं काल को अन्तकृत या संहर्त्ता ही कहा गया है यथा – कालो जगद्भक्षक:। कुछ सूक्तियाँ भी इसी को व्यक्त करती हैं- ''कालो न यातो वयमेव याता।'' भगवान भास्कर ने भी सूर्यसिद्धान्त में काल का निरूपण करते हुए कहा है –

लोकानामन्तकृत काल: कालोऽनय: कलनात्मक:।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान् मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।

यहाँ भी काल के दो भेद बताये गये हैं तथा एक भेद को अन्तकृत लोक का नाश करने वाला तथा

दूसरे भेद को कलनात्मक कहा गया है। कलनात्मक काल भी मूर्त्त और अमूर्त्त भेद से दो प्रकार का है। जो व्यवहार योग्य काल है उसे स्थूल अथवा मूर्त्त कहते हैं तथा जो व्यवहार योग्य नहीं हैं उसे सूक्ष्म और अमूर्त्त कहते हैं। यदि इन दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही कलनात्मक काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। इस शाश्वत सिद्धान्त के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे अन्तकृत् काल कहा जाता है। इसी प्रकार जो इकाई सृष्टयारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये हैं। गणितीय दृष्टि से सृष्टि एक प्रक्रिया हैं सृष्टयन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम कल्प कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि को समेट कर विश्राम करते हैं। कल्प ब्रह्म का एक दिन होता है तथा एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि होती है। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ-साथ सृष्टयारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत ही रहता है। जैसा कि श्रुति कहती है- ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।'' ब्रह्मा को सृष्टि की रचना में ४७४०० दिव्यवर्ष का समय लगता है। जैसा कि सूर्यसिद्धान्त में कथित है –

ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा (४७४) दिव्याब्दा: शतघ्ना वेधसो गता:।।

अत: सृष्टयन्त और कल्पान्त दोनों ही काल की एक महत्तम इकाई के पर्याय है। इसी प्रकार स्थूल काल की लघुतम इकाई प्राण तथा सूक्ष्म काल की लघु इकाई त्रुटि कही गई है। गणना हेतु ज्योतिषशास्त्र में काल के नवभेद बताये गये हैं। जो इस प्रकार हैं-

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव।।

अर्थात् 1. ब्राह्म, 2. दिव्य, 3. पैत्रय, 4. प्राजापत्य, 5. गौरव (गुरू सम्बन्धी) 6. सौर, 7. सावन, 8. चान्द्र तथा 9. नाक्षत्र ये नव मान कहे गये हैं। यद्यपि ये मान कालभेद के रूप में कहे गये हैं। किन्तु ये सभी मान मात्र मापक हैं। इन्हें कालमापक इकाईयों का भेद मानना चाहिए। जैसे किसी दीवार को मापने के लिए हम अंगुल और हस्त का भी प्रयोग कर सकते हैं। माप्य दीवार एक ही है तथा मापक

उपकरण भिन्न- भिन्न हैं। इसी प्रकार काल एक ही अनादि अनन्त है। उसे मापने के लिए हम कभी सूर्य, कभी चन्द्र, कभी वृहस्पति आदि का उपयोग करते हैं। आचार्य भास्कर ने भी सिद्धान्त लक्षण में कहा है – त्रुट्यादि प्रलयान्तकालकलना मान: प्रभेद: कमात्। त्रुटि से आरम्भ कर प्रलयान्त काल तक काल गणना तथा उनको मानों अर्थात् मापकों के भेदों का विवेचन सिद्धान्त में किया जाता है। काल की गति के विषय में मतान्तर मिलते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि काल सीधी रेखा में गतिशील रहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल भी चक्र भ्रमण करता है। इसीलिए इसे कालचक्र भी कहा जाता है। नेपाल और तिब्बत में कालचक्रज्योतिष नाम से ज्योतिष की एक प्रमुख विधा है। साहित्यकारों ने काल के चक्र भ्रमण को इंगित करते हुए लिखा है –

''चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति:।''

आजकल भी एक प्रसिद्ध उक्ति है इतिहास सदैव अपने आप को दुहराता है। ये मात्र सूक्तियाँ नहीं है। इनके मूल में कुछ महत्वपूर्ण अनुभव भी होते हैं।

आचार्य पराशर ने भी दशाओं के वर्णन में एक कालचक्र दशा का उल्लेख किया है। यदि हम ब्रह्माण्ड के स्वरूप पर ध्यान दें तो समस्त ब्रह्माण्ड ही चक्रभ्रमण करता हुआ प्रतीत होगा। यदि ब्रह्माण्ड के शब्दार्थ को लिया जाय तो अनेक गुत्थियाँ स्वत: ही सुलझ जाती है। ब्रह्म + अण्ड, अर्थात् ब्रह्म द्वारा निर्मित अण्ड जिसमें समस्त सौर मण्डल एवं नक्षत्रादि है, तथा उसकी परिधि अण्डाकार (दीर्घ वृत्तानुकारी) है। इसी अण्डाकार परिधि के अन्दर ग्रहादिकों की दीर्घवृत्ताकार कक्षायें है तथा इसी अण्डाकार परिधि में कालचक्र भी भ्रमण करता है। ऐसी स्थिति में काल की गति एक सीधी रेखा में मानना युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। आकाश मण्डल में स्थित इकाईयों के चक्रभ्रमण को भगवान व्यास ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है।

उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि।
स हि भ्रमन् भ्रामयते नित्यं चन्द्रादित्यौ ग्रहै: सह।।

अर्थात् ध्रुव शिंशुमार चक्र में अवस्थित रहते हुए सूर्य-चन्द्र सहित समस्त नक्षत्र चक्र को घुमाता हुआ स्वयं भी घूमता है। आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है कि आकाशस्थ सभी पिण्ड भ्रमण कर रहे हैं। जहाँ तक सीधी रेखा में गतिशील होने का प्रश्न है वह किसी नियत काल या नियत दूरी तक तो सम्भव है अनन्तकाल और अनन्त दूरी तक सम्भव नहीं है। पृथ्वी को भी हम सीधी रेखा में देखते हैं। जब कि हम जानते हैं पृथ्वी गोल है। परन्तु हम पृथ्वी के गोलत्व को नहीं देख पाते। हम कही भी जायेंगे पृथ्वी हमे समान सीधी, समतल सरल रेखा में ही दिखलाई पड़ेगी। इस रहस्य को गणित का यह सिद्धान्त सुलझाता है – ''परिधे: षण्नवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते।'' अर्थात् परिधि का

96 वाँ भाग दण्डवत (दण्ड के समान) सीधी रेखा में दिखाई पड़ता है। हमारी दृष्टि 96 वें भाग से भी बहुत न्यून भाग को देख पाती है। इसीलिए पृथ्वी हमें सीधी सरल रेखा में दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार काल का भी कुछ दूरी तक एक सीधी रेखा में जाते हुए प्रतीत होना स्वाभाविक है।

मनुष्य की भी एक सीमा है उससे अधिक वह तो न जा सकता है न देख सकता है। पृथ्वी के वायुमण्डल से बाहर जाने पर पृथ्वी का स्वरूप दिव्य नेत्रों से अथवा सक्षम उपकरणों से देखा जा सकता है, किन्तु अपने चर्म चक्षुओं से वायुमण्डल की सीमा पर भी जाकर हम कुछ नहीं देख सकते। क्योंकि जाते ही घोर अन्ध तमस ही दिखाई देगा। जैसा कि सीता के अन्वेषण के समय अपनी गति से सीमान्त तक जाकर जामवन्त जी ने देखा और सुग्रीव को बताया –

एतावद् वानरै: शक्यं गन्तुं वानरपुंगवा।
अभास्करममर्यादं न जानीमस्तत: परम्।।

इस प्रकार शास्त्रीय प्रमाण एवं गणितीय आधार पर हम कह सकते हैं कि काल का भी चक्रभ्रमण होता है, किन्तु इसकी अवधि निर्धारित करना दुष्कर है।

1.3.1 व्युत्पत्ति व विभिन्न अवयव

कल संख्यायने धातु से घञ् प्रत्यय करने पर (कलन अर्थ में) काल शब्द का निर्माण होता है। कलयते लोकान इति काल:। कालविधायक होने के कारण ज्योतिषशास्त्र को 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। विश्व के समस्त चराचर प्राणी कालाभिभूत है। अत: इस शास्त्र की महत्ता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि प्रत्येक को उनके अपने-अपने निर्धारित काल में होने वाली घटनाओं की जिज्ञासा होती है।

कालमापन हेतु जिन नव मानों का उल्लेख किया गया है उनमें से चार कालमान हमारी दिनचर्या से जुड़े हैं। वे हैं सौर- चन्द्र-सावन और नाक्षत्र। जब हमे मास से अधिक काल की गणना करनी होती है तब हम सौर मान का प्रयोग करते हैं। सूर्य एकमास तक एक राशि में रहता है। 12 राशियों में भ्रमण करने में 12 मास अर्थात् एक वर्ष लगता है। मास की गणना हम चान्द्रमास से करते है। अमान्त से अमान्त तक अथवा पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक चान्द्रमास होता है। दिन की गणना हम पृथ्वी के दिन अथवा सावन दिन से करते हैं। दो सूर्योदय के मध्य का काल सावन दिन या पृथ्वी का दिन होता है। एक नक्षत्र के उदय काल से द्वितीय उदय काल तक नाक्षत्र काल होता है। इस काल की अवधि सुनिश्चित है। 60 घटी बाद यह परिभ्रमण कर पुन: उसी बिन्दु पर आ जाता है। इसीलिए नाक्षत्र दिन का मान सदैव एक समान 24 घण्टे या 60 घटी का ही होता है। इसी स्थिर काल के आधार पर घण्टा मिनट का विचार किया जाता है या घटी पल आदि लघु काल खण्डों का विभाजन या गणना

की जाती है। इस काल विभाजन व्यवस्था को आचार्य भास्कर ने अपनी प्रसिद्ध रचना सिद्धान्त शिरोमणि में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है –

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्।
मासांस्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।।
यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासाराद्यम्।
तत् सावनाच्च घटिकादिमार्क्षमानात्।।

घटयादि लघुकालखण्डों की गणना नाक्षत्रमान के अतिरिक्त अन्य सौरादि मानों से सम्भव नहीं हैं, उन मानों के प्रतिदिन न्यूनाधिक होने के कारण। नाक्षत्र काल में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि इसका मान ६० घटी या २४ घण्टे का प्रतिदिन होता है। घटी यन्त्र (घड़ी) द्वारा सूचित काल नाक्षत्र काल ही होता है, प्रतिदिन समान रूप होने के कारण।इस प्रकार आवश्यकतानुसार विभिन्न कालमानों का उपयोग होता रहा है तथा आज भी हो रहा है। दैनिक उपयोग में आने वाले कालमानों का विवरण इस प्रकार है –

काल के अवयव

अमूर्त्त काल सूक्ष्म	मूर्त्त काल (स्थूल)
पद्मपत्र भेदनकाल = १ त्रुटि	६ विपल = १ प्राण
६० त्रुटि = १ रेणु	६० विपल = १ पल
६० रेणु = १लव	६० पल = १ घटी
६० लव = १ लीक्षक	६० घटी = १ अहोरात्र
	३० अहोरात्र = १ मास
६० लीक्षक = १ प्राण	१२ मास = १ वर्ष

२४ सेकेण्ड = ६० विपल = १ पल
२४ मिनट = ६० पल = १ घटी
२४ घण्टा = ६० घटी = १ अहोरात्र

काल की बड़ी इकाई

कृतयुग = १७२८००० सौरवर्ष
त्रेतायुग = १२९६००० सौरवर्ष
द्वापरयुग = ८६४००० सौरवर्ष
कलियुग = ४३२००० सौरवर्ष

महायुग = ४३२०००० सौरवर्ष

मनु = ३०६७२०००० सौरवर्ष

कल्प = ४३२ ०००००० सौरवर्ष ब्राह्म दिन

ब्राह्म अहोरात्र = ८६४०००००० सौरवर्ष

काल की बड़ी इकाईयों की गणना सौरमान से ही की गई है। इनके अतिरिक्त सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है –

सौरेण द्युनिशोर्मानम् षडशीतिमुखानि च।
अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्ते: पुण्यकालताम्।।

अर्थात् सौर अहोरात्रों के साथ-साथ षडशीतिमुख संक्रान्तियों के दिनों अयनों एवं विषुवदिनों तथा संक्रान्तियों के पुण्यकालों का निर्णय भी सौरमान से ही करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न -1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. काल अनन्त और अनादि होने के कारण ..... है।
2. लोकानामन्तकृत काल: कालोऽन्य: ..... ।
3. ब्रह्मा जी को सृष्टि रचना में ..... दिव्यवर्ष का समय लगता है।
4. कल संख्यायने धातु से ..... प्रत्यय करने पर काल शब्द की व्युत्पत्ति होती है।
5. ब्रह्मा जी का एक अहोरात्र ..... कल्प के बराबर होता है।
6. काल: सृजति ..... ।
7. ६० त्रुटि ..... ?
8. २४ मिनट = ?
9. परिधि का ..... भाग दण्डवत (दण्ड के समान) सीधी रेखा में दिखाई पड़ता है।
10. कालविधायक होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को ..... भी कहा जाता है।

मकर राशि में सूर्य के प्रवेश करने पर उत्तर अयन तथा कर्क राशि में प्रवेश करने (कर्क संक्रान्ति से) से दक्षिण अयन की प्रवृत्ति होती है। मेष और तुला में सूं जिस दिन प्रवेश करता है उसे विषुव दिन कहते है। वस्तुत: सायन मेष और सायन तुला में सूर्य के रहने पर विषुव दिन होता है। विषुव दिनों में दिन रात्रि का मान बराबर होता है। षडशीति का अभिप्राय है- तुला संक्रान्ति से आरम्भ कर ८६ दिनों की

अवधि षडशीति मुखमान। तुलाराशि से आरम्भ कर 86 अंशों के अन्तराल पर चार षडशीति मान होते हैं। ३४४ दिनों में चारों षडशीति मान पूर्ण होते हैं। वर्षमान ३६० दिन में ३४४ दिन षडशीति के अतिरिक्त शेष १६ दिन कन्याराशि के अवशिष्ट रह जाते हैं। ये १६ दिन श्राद्ध के लिए उपयुक्त होते हैं। इस अवधि में की गई पितृ क्रिया अक्षय पुण्य देने वाली होती है। सूर्यसिद्धान्त में इन १६ दिनों को यज्ञतुल्य काल कहा गया है –

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृणां दत्तमक्षयम्।।

ये सभी व्यावहारिक काल हैं। इनका उपयोग निरन्तर होता रहता है। इनके अतिरिक्त गौरव मान (गुरू से सम्बन्धित) भी प्रयोग में आता है। इसका अधिक विवेचन नहीं मिलता है केवल इतना ही कहा गया है कि वृहस्पति के मध्यम मान से राशि के भोगकाल को एक संवत्सर कहते हैं। संवत्सर साठ होते हैं जिनकी गणना प्राचीन काल में विजयादि क्रम से होती थी जैसा कि सूर्यसिद्धान्त कहता है-

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकै:।
राशिभि: सहिता: शुद्धा: षष्ट्या स्युर्विजयादय:।।

किन्तु आज व्यवहार में प्रभवादि ६० संवत्सर हैं। उनके तीन विभाग किये गये हैं –

१. ब्रह्मविंशतिका २. विष्णुविंशतिका ३. रूद्रविंशतिका

इन संवत्सरों की अवधि ११ मास से १३ मास की तक की होती है। भारतीय परम्परा में काल अनन्त है उसकी परिभाषायें तथा इकाईयाँ भी अनन्त हैं। यहाँ केवल दैनिक जीवन में व्यवहृत कालमानों का वर्णन किया गया हैं। साठ संवत्सरों के नाम निम्नलिखित हैं –

	ब्रह्मविंशतिका		**विष्णुविंशतिका**		**रूद्रविंशतिका**
१	प्रभव	२१	सर्वजित्	४१	प्लवंग
२	विभव	२२	सर्वधारी	४२	कीलक
३	शुक्ल	२३	विरोधी	४३	सौम्य
४	प्रमोद	२४	विकृति	४४	साधारण
५	प्रजापति	२५	खर	४५	विरोधकृत्
६	अंगिरा	२६	नन्दन	४६	परिधावी
७	श्रीमुख	२७	विजय	४७	प्रमादी
८	भाव	२८	जय	४८	आनन्द
९	युवा	२९	मन्मथ	४९	राक्षस

१०	धाता	३०	दुर्मुख	५०	नल
११	ईश्वर	३१	हेमलम्बी	५१	पिंगल
१२	बहुधान्य	३२	विलम्बी	५२	कालयुक्त
१३	प्रभावी	३३	विकारी	५३	सिद्धार्थी
१४	विक्रम	३४	शर्वरी	५४	रौद्र
१५	वृष	३५	प्लव	५५	दुर्मति
१६	चित्रभानु	३६	शुभकृत्	५६	दुन्दुभि
१७	सुभानु	३७	शोभकृत्	५७	रूधिरोद्गारी
१८	तारण	३८	क्रोधी	५८	रक्ताक्षी
१९	पार्थिव	३९	विश्वावसु	५९	क्रोधन
२०	व्यय	४०	पराभव	६०	क्षय

विभिन्न कालमानों का सुव्यवस्थित और प्रमाणिक विवेचन भारतीय वैदिक वांगमय में उपलब्ध है। इतना विस्तृत विवरण अन्यत्र दुर्लभ है।

1.4 विभिन्न मतानुसार काल स्वरूप

व्यावहारिक दृष्ट्या एवं शास्त्रीयदृष्ट्या काल के महत्व को जानते हुए ज्योतिषशास्त्र के आदि पुरूष महात्मा लगध ने वेदांगज्योतिष में सर्वप्रथम काल को अभिवादन करते हुए कहा है कि –

पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासांगं प्रणम्य शिरसा शुचि:।।
प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मना।।

अब आइए हम विभिन्न मतानुसार काल के स्वरूपों को जानने का प्रयास करते हैं।

1.4.1 भास्कर मतेन कालप्रवृत्ति

ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तकालीन आचार्य भास्कराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणी में कालप्रवृत्ति के बारे में इस प्रकार कहा गया है –

लंकानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधो: सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्ति:।।

अर्थात् लंकापुरी नगरी में जब सूर्य का प्रथम बार उदय हुआ तब चैत्र शुक्ल रविवार से दिन, मास, वर्ष, युग तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति हुई। यहाँ प्रवृत्ति शब्द का अर्थ सृष्टि के आदि से है। जिस समय सूर्य का प्रथम बार लंका में उदय हुआ। उस समय से सृष्टि का आरम्भ कहा गया है तथा उस समय चैत्र शुक्ल पक्ष रविवार था तथा उसी घड़ी से कल्प, युग,वर्ष, मास तथा दिन की गणना प्रारम्भ हुई। जिस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में काल गणना के इन अवयवों की प्रवृत्ति हुई उसी प्रकार प्रलयकाल में इन का अन्त हो जाता है तथा सभी जीवों एवं सूर्यादि ग्रहों का भी अन्त हो जाता है। ऐसे काल को अव्यक्त काल कहते हैं तथा इसका अभिप्राय अव्यक्त अवस्था से है। इस युक्ति से काल अनादि तथा अनन्त कहा गया है। उस अव्यक्त काल से सृष्टि का आरम्भ होता है तथा व्यक्त जीव एवं भचक्र ग्रहादि का प्रादुर्भव होता है। उसी समय से व्यक्त नाम दिन, मास, वर्ष, युग, कल्पादि की प्रवृत्ति होती है। जैसे – मधुमासादि, शुक्ल पक्षादि, दिनादि, सौर दिनादि तथा मास वर्ष, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति होती है।

1.4.2 पुराणों में काल महिमा

पुराणों (विष्णु पुराण, कूर्म पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण) में काल महिमा का वर्णन –

कलनाद्, सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः।
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरः परः।।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः।
ब्रह्मणो बहवो रूद्रा अन्ये नारायणादयः।।
एकोऽहि भगवानीशः कालः कविरिति स्मृतः।
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्राकृतोलयः।।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः।
परं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः।।
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः।
तस्मात् कालात्मकं विश्वं स एव परमेश्वरः।।
अनादि निधनः कालो रूद्रः संकर्षणस्मृतः।
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु संकर्षणः स्मृतः।।
सर्वभूतसमित्वाच्च स रूद्रः परिकीर्तितः।
अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वरः।।

यहाँ उपर्युक्त श्लोक में भी काल को बतलाते हुए कहते है कि- कालः कलयताम्यहम्। स्वं भगवान

एव काल:।। सर्वभूतानां अर्थात् सभी प्राणियों का अन्त करने वाला संहार रूपी काल को 'अन्तकृत काल' अथवा 'महाकाल' कहते हैं। इसी प्रकार एक कलनात्मक काल होता है, जो मानव जीवन में व्यावहारिक काल के रूप में जाना जाता है। काल को हम अनादि, अनन्त, अजर तथा अमर आदि के नाम से भी जानते है। ब्रह्मा, विष्णु (नारायण) एवं रूद्र को विभिन्न काल रूपों में यहाँ वर्णन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अन्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त में भगवान तथा भृगु संवाद में भगवान द्वारा कथित वाक्य है –

लंकायामर्कोदये चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भेऽर्कदिनादावश्विन्यादौ किंस्तुघ्नादौ रौद्रादौ कालप्रवृत्ति:। यहाँ अश्विन नक्षत्र तथा किंस्तुघ्न करण का नाम विशेष रूप से दिया गया है, शेष आचार्य भास्कर के अनुसार ही है, जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है।

काल: पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
कान्ते स पक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्।।

काल सभी भूतों अर्थात् प्राणियों को (एवं उनके साथ-साथ सभी वनस्पतियों एवं जड़ पदार्थों को भी) अपने साथ पकाता है। पकाना अर्थात् परिपक्व बनाना, अन्तिम अवस्था तक ले जाना। काल न केवल सभी जड़-चेतन पदार्थों को पकाता है अपितु स्वयं भी पकता है। अर्थात् काल की भी अन्तिम अवस्था आती है।

यहाँ पुनः आप के मन में प्रश्न उठता है कि काल की अन्तिम अवस्था कब आती है? इसका उत्तर है- 'कान्ते' अर्थात् कस्य अन्ते। कः ब्रह्मा तस्य ब्रह्मणः अन्ते अवसानकाले अर्थात् ब्रह्मा का अन्तिम समय आने पर । प्रचीन सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं किन्तु ब्रह्मा का भी अन्त होता है। तत्पश्चात् दूसरे ब्रह्मा के द्वारा पुनः सृष्टि होती है। ब्रह्मा की परमायु आयु 100 वर्ष मानी गई है एवं ब्रह्मा का 1 दिन 2 कल्प के तुल्य होता है । 1 कल्प में 1000 महायुग होते हैं। इन महायुग-कल्प-ब्राह्म दिन की चर्चा तत्तत्स्थलों पर की जाएगी। प्रसंगवशात् केवल इन विषयों का नामोल्लेख यहॉ किया गया है।

अब हम लोग प्रकृत पर पुनः आते हैं। जैसा कि आप ने ऊपर पढ़ा कि ब्रह्मा का भी अन्त काल होता है। इसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय के समय काल पकी हुई सारी सृष्टि के साथ स्वयं भी पचता हुआ उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म परमपिता परमेश्वर में लीन हो जाता है।

1.4.3 श्रीमद्भगवद्गीता में काल वर्णन –

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्त:।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिता: प्रत्यनीकेषु योधा:।।

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते है कि हे अर्जुन! मैं सम्पूर्ण लोक का विनाश करने वाला इन उग्ररूपों से सम्पन्न बढ़ा हुआ काल हूँ। मैं इन असुर लोगों का संहार करने के लिए ही प्रवृत्त हुआ हूँ। जो इस समय तुम्हारी प्रतिपक्ष सेनाओं में योद्धा स्थित हैं, ये सभी तुम्हारे बिना भी अर्थात् तुम्हारे युद्ध न करने पर भी जीवित नहीं रहेंगे।

और भी –

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्व: सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षय: कालो धाताहं विश्वतोमुख:।।

यहाँ भी भगवान अपने को अक्षय काल अर्थात् कभी न खत्म होने वाला काल के रूप में बतला रहे हैं।

1.4.4 पाश्चात्य मत में काल गणना

पाश्चात्य कालगणना पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात हो जायेगा कि १७ वीं शताब्दी तक कालगणना की कोई स्पष्ट रूपेरखा नहीं बन पाई थी। ६७३ ई. पूर्व तक रोमन पंचांगों में वर्षमान ३०४ दिन ही माने जाते थे। १० मासों का वर्ष होता था। वर्षारम्भ मार्च से तथा वर्षान्त २५ दिसम्बर को होता था। शीतकाल के २ मासों की गणना नहीं होती थी। ईसा पूर्व ६७३ में नूमा पोम्पिलियस ने ५१ दिनों (२ मासों) को जोड़कर वर्षमान ३५५ दिन का बनाया तथा जैनस देवता के नाम पर जनवरी तथा फरवरी जोड़कर वर्षारम्भ जनवरी से आरम्भ किया। आवश्यकतानुसार वर्षमान में कुछ वर्षों के अन्तराल पर २२-२३ दिनों को जोड़कर शुद्ध किया जाता था। ईसा पूर्व ४४ ई. में जूलियस सीजर ने मिस्री ज्योतिषी सोसिजेन्स के सुझाव पर वर्षमान को ३६५.२५ दिनों का घोषित किया। ४४ ईसा पूर्व जूलियस सीजर के सम्मान में मार्च से पाँचवें मास क्विन्टिलिस को जुलाई कर दिया गया। पुन: ८ ईसापूर्व में जुलियस सीजर के उत्तराधिकारी आगस्टस सीजर के नाम पर सेक्स्टिलिस मास का नाम अगस्त कर दिया गया। दोनों राजाओं के सम्मान में जुलाई और अगस्त मासों की दिन संख्या ३१-३१ दिन कर दी गई तथा दिन का सन्तुलन बनाये रखने के लिए फरवरी से २ दिन घटा दिये गये।

इसी प्रकार ग्रीगोरियन पंचांग में परिष्कार किये गये। सन् १५८२ ई0 में पोप ग्रिगोरी त्रयोदश ने आदेश पारित किया कि ५ अक्टूबर शुक्रवार को १५ अक्टूबर शुक्रवार माना जाय। लगभग २०० वर्ष बाद पुन: ११ दिनों की त्रुटि पाई गई। अत: उसे दूर करने के लिए सन् १७५२ ई0 में ३ सितम्बर को १४ सितम्बर घोषित किया गया। भविष्य में भी संशोधन सम्भव है। अत: भारतीय कालगणना पद्धति ही पूर्णशुद्ध एवं वैज्ञानिक है।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. वृहस्पति के मध्यम मान से राशि के भोगकाल को कहते हैं -
   क. एक संवत्सर ख. एक नाक्षत्र मान ग. एक लुप्त वत्सर घ. गौरव मान
2. सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने से होता है –
   क. उत्तरायण का आरम्भ
   ख. दक्षिणायन का आरम्भ
   ग. ऋतु परिवर्तन
   घ. सौम्य गोलारम्भ
3. निम्न में वेदांग ज्योतिष के प्रणेता है –
   क. भास्कर ख. लगध ग. कमलाकर घ. गणेश
4. श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अपने को समासों में किस समास की संज्ञा दी है।
   क. बहुव्रीहि ख. द्वन्द्व ग. कर्मधारय घ. केवल
5. एक कल्प में कितने महायुग होते है –
   क. १००० महायुग ख.२००० महायुग ग. ३००० महायुग घ. कोई नहीं

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि काल अनन्त और अनादि होने के कारण अनिर्वचनीय है। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध कर देना अत्यन्त सरल नहीं है। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है। ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।'' कहीं-कहीं काल को अन्तकृत या संहर्त्ता ही कहा गया है यथा – कालो जगद्भक्षक:। कुछ सूक्तियाँ भी इसी को व्यक्त करती हैं- ''कालो न यातो वयमेव याता।'' भगवान भास्कर ने भी सूर्यसिद्धान्त में काल का निरूपण करते हुए कहा है –लोकानामन्तकृत काल: कालोऽनय: कलनात्मक:। स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान् मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।यहाँ भी काल के दो भेद बताये गये हैं तथा एक भेद को अन्तकृत लोक का नाश करने वाला तथा दूसरे भेद को कलनात्मक कहा गया है। कलनात्मक काल भी मूर्त्त और अमूर्त्त भेद से दो प्रकार का है। जो व्यवहार योग्य काल है उसे 'स्थूल' अथवा 'मूर्त्त' कहते हैं तथा जो व्यवहार योग्य नहीं हैं उसे 'सूक्ष्म' और अमूर्त्त कहते हैं। यदि इन दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही कलनात्मक

काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। इस शाश्वत सिद्धान्त के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे अन्तकृत् काल कहा जाता है। इसी प्रकार जो इकाई सृष्टयारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये हैं। गणितीय दृष्टि से सृष्टि एक प्रक्रिया हैं सृष्टयन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम कल्प कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि को समेट कर विश्राम करते हैं। कल्प ब्रह्म का एक दिन होता है तथा एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि होती है। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ-साथ सृष्टयारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत ही रहता है। जैसा कि श्रुति कहती है- ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।'' सृष्टि की रचना में ब्रह्मा को ४७४०० दिव्यवर्ष का समय लगता है।

1.6 बोध प्रश्नो का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 के उत्तर

1. अनिर्वचनीय
2. कलनात्मक
3. ४७४००
4. घञ्
5. दो कल्प
6. भूतानि
7. १ रेणु
8. १ घटी
9. ९६ वाँ भाग
10. कालशास्त्र

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. क
2. क
3. ख

4. ख
5. क

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री।
2. सिद्धान्तशिरोमणि- चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. प्राच्यविद्यानुशीलनम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।
5. श्रीमद्भगवद्गीता – श्रीरामभद्राचार्य विरचितम्।
6. विष्णु पुराण

1.8 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

काल – कलनात्मक एवं अव्यक्त, अनादि, अनन्त, अनिवर्चनीय, अगोचर।

कलनात्मक काल – जिसकी गणना की जा सके।

अन्तकृत काल – सृष्टि का अन्त करने वाला।

नवविधकाल – ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध रूप से नवविधकाल मान का उल्लेख है। वे है- ब्राह्म, दिव्य, पितृ, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, नाक्षत्र एवं चान्द्र।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. काल किसे कहते है? स्पष्ट कीजिये।
2. अन्तकृत काल से क्या तात्पर्य है? लिखिये।
3. काल के महत्व का प्रतिपादन स्वशब्दों में कीजिये।
4. काल के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कीजिये।
5. पुराणों में काल की महिमा पर प्रकाश डालिये।

इकाई - 2 अमूर्त्त काल विवेचन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अमूर्त्त काल परिचय

2.4 अमूर्त्त काल विवेचन

2.4.1 प्रसिद्ध नवकालमान का सूक्ष्म परिचय

2.5 सूक्ष्म काल

2.5.1 त्रुटि

2.5.2 रेणु

2.5.3 तत्पर

2.5.4 निमेष

2.5.5 लव

2.5.6 लीक्षक

2.6 आधुनिक सूक्ष्म काल

2.7 सारांश

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.10 सहायक पाठ्यसामग्री

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–502 के द्वितीय खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - अमूर्त्त काल विवेचन। इससे पूर्व की इकाई में आपने ज्योतिषशास्त्रोक्त काल एवं उसके विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर लिया है। अब इस इकाई में आप अमूर्त्त काल का अध्ययन करने जा रहे हैं।

अमूर्त्त काल का अर्थ है – वह काल जिसका सामान्यतया व्यवहार में प्रयोग नहीं होता अर्थात् वह सूक्ष्म काल का खण्ड होता है।

आइए अब इस इकाई में हम अमूर्त्त काल (सूक्ष्म काल) के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- जान लेंगे कि अमूर्त्त काल किसे कहते है।
- अमूर्त्त काल के स्वरूप को समझ लेंगे।
- अमूर्त्त काल के अवयवों की जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- अमूर्त्त काल को व्यक्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

2.3 अमूर्त्त काल परिचय

जैसा कि आप जानते हैं इस सृष्टि के समस्त चराचर प्राणि कालाभिभूत है। काल से पृथक् होकर इस सृष्टि की कल्पना असम्भव है। इसलिए यह सृष्टि काल से अभिन्न है। काल सम्पूर्ण सृष्टि का मूल है। काल के बिना इस संसार का अस्तित्व ही नहीं है । इस संसार में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो काल की सीमा से परे हो। अब प्रश्न उठता है कि काल शब्द का क्या अर्थ है? व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से यदि देखे तो 'कल संख्यायने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर काल शब्द की व्युत्पत्ति निष्पन्न होती है। अन्य रूप में '**कलयति लोकान इति कालः**' इस व्युत्पत्ति से जो कलन (भक्षण) करता है अथवा जिसकी लोक में गणना होती है, अथवा की जा सकती है, वह 'काल' है। इन दो अर्थों के कारण काल मुख्यतया 2 प्रकार का होता है। 1. लोक का संहार करने वाला , 2. गणनात्मक (कलनात्मक) अर्थात् गणना करने वाला।

संहारक काल लोक अर्थात् जगत् का विनाश करने वाला होता है, जिसे हम 'महाकाल' या 'अन्तकृत काल' के रूप में भी जानते हैं। सृष्टि के अन्त में इसी काल के प्रभाव से सम्पूर्ण सृष्टि का

नाश हो जाता है और वह जलप्लव में परिणत हो जाती है। दूसरा काल कलनात्मक या गणनात्मक है। अर्थात् वह काल जिसकी कलना या गणना की जा सके। यह गणनीय काल भी मुख्यतया 'सूक्ष्म' तथा 'स्थूल' इन दो भेदों में विभक्त है।

ज्योतिषशास्त्र को जानने वाले यह जानते है कि इस शास्त्र में मुख्यतया 'नवकालमान' की प्रसिद्धि है, जिनका नाम – ब्राह्म, दिव्य, पैत्र्य, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, नाक्षत्र एवं चान्द्र मान हैं, किन्तु प्रस्तुत इकाई 'अमूर्त्त काल' से सम्बन्धित है, अत: हम यहाँ प्रमुख रूप से अमूर्त्त काल की चर्चा करेंगे।

भगवान की उपदेशात्मक उक्ति है -

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना,
कान्ते सपक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्।

श्लोकान्वय-

कालः सर्वाणि एव भूतानि आत्मना सह पचति। कान्ते सपक्वः तनैव सह लयं व्रजेत्।

शब्दार्थ-

कालः सर्वाणि एव भूतानि = सभी प्रणियों को, आत्मना सह = अपने साथ, पचति = पकाता है। कान्ते = ब्रह्मा का अन्त होने पर (प्रलय होने पर), सपक्वः तेनैव सह = स्वयं पका हुआ, उन पके हुए प्राणियों के साथ , अव्यक्ते = परब्रह्म में, लयं व्रजेत् = लीन हो जाए विलीन हो जाता है।

हिन्दी व्याख्या-

काल सभी भूतों अर्थात् प्राणियों को (एवं उनके साथ-साथ सभी वनस्पतियों एवं जड़ पदार्थों को भी) अपने साथ पकाता है। पकाना अर्थात् परिपक्व बनाना, अन्तिम अवस्था तक ले जाना। काल न केवल सभी जड़-चेतन पदार्थों को पकाता है अपितु स्वयं भी पकता है। अर्थात् काल की भी अन्तिम अवस्था आती है।

यहाँ पुनः आप के मन में प्रश्न उठता है कि काल की अन्तिम अवस्था कब आती है? इसका उत्तर है- 'कान्ते' अर्थात् कस्य अन्ते। कः ब्रह्मा तस्य ब्रह्मणः अन्ते अवसानकाले अर्थात् ब्रह्मा का अन्तिम समय आने पर। प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं किन्तु ब्रह्मा का भी अन्त होता है। तत्पश्चात् दूसरे ब्रह्मा के द्वारा पुनः सृष्टि होती है। ब्रह्मा की परमायु आयु 100 वर्ष मानी गई है एवं ब्रह्मा का 1 दिन 2 कल्प के तुल्य होता है । 1 कल्प में 1000 महायुग होते हैं। इन महायुग-कल्प-ब्राह्म दिन की चर्चा तत्तत्स्थलों पर की जाएगी। प्रसंगवशात् केवल इन विषयों का नामोल्लेख यहाँ किया गया है।

अब जैसा कि आप ने ऊपर पढ़ा कि ब्रह्मा का भी अन्त काल होता है। इसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय के समय काल पकी हुई सारी सृष्टि के साथ स्वयं भी पचता हुआ उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म परमपिता परमेश्वर में लीन हो जाता है। महाभारत के आदिपर्व में काल की सम्पूर्ण व्याख्या बड़े ही सुन्दर ढंग से की गई है -

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः।।
कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान्।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजाः विसृजते पुनः।।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।।

अन्वय-

कालः भूतानि सृजति कालः प्रजाः संहरते। पुनः प्रजाः संहरन्तं कालं कालः शमयते। सर्वलोके कालो हि शुभाशुभान् भावान् कुरुते। कालः पुनः सर्वाः प्रजाः विसृजते (ततः) संक्षिपते। सुप्तेषु कालः जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।

सरलार्थ-

कालः भूतानि = सभी पदार्थों को, सृजति = उत्पन्न करता है। कालः = काल ही, प्रजाः संहरते = सभी प्राणियों (समस्त पदार्थों का) संहार करता है अर्थात् विनाश करता है। प्रजाः संहरन्तं कालं = प्राणियों का संहार करने वाले काल को पुनः कालः शमयते = फिर काल ही शान्त करता है अर्थात् समाप्त करता है। सर्वलोके = सम्पूर्ण जगत् में, कालो हि = निश्चयपूर्वक काल ही, शुभाशुभान् भावान = शुभाशुभ भावों को अर्थात् लाभ-हानि से उत्पन्न सुख-दुःख रूपी भावों को, कुरुते = उत्पन्न करता है। कालः = काल ही पुनः = फिर से (नष्ट करने के बाद पुनः), सर्वाः प्रजाः = सारी सृष्टि को, विसृजते संक्षिपते = उत्पन्न करता है तत्पश्चात् पुनः संक्षिप्त करता है अर्थात् समाप्त करता है। सुप्तेषु = शयनावस्था में जब सभी प्राणी सो रहे होते हैं अर्थात् विरामावस्था में स्थिर रहते हैं, तब भी कालः = यह समय जागर्ति = जागता रहता है अर्थात् चलायमान रहता है। कालो हि दुरतिक्रमः = काल का अतिक्रम दुष्कर है अर्थात् काल अजेय है।

सूर्य सिद्धान्त भी काल के इस विभाजन का समर्थन करता है। जैसा कि सूर्य के अंशावतार का कथन है -

''लोकानाम् अन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्न मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।

शब्दार्थ: - लोकानाम्= लोक का अर्थात् जगत् का, अन्तकृत् = अन्त करने वाला संहारक, कालः = काल है, कालोऽन्यः = दूसरा काल अर्थात् काल का दूसरा स्वरूप, कलनात्मकः= कलात्मक गणना करने योग्य है। अर्थात् मुख्यतया काल के दो स्वरूपों से हम परिचित हैं जिनमें पहला संहारक तथा दूसरा गणनात्मक है।

विशेष ध्यातव्य – पहले प्रकार के काल की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि न तो यह ज्ञात है कि वह कब से आरम्भ हुआ और न यही ज्ञात है कि उसका अन्त कब होगा। यह अखण्ड और व्यापक है, परन्तु इसके बीच में ही अथवा इसके उपस्थित रहते ही लोक का अन्त हो जाता है, ब्रह्मा उत्पन्न होते है, सृष्टि रचते है, तथा लय करते हैं, परन्तु काल की सत्ता बनी रहती है। इसलिए इसको लोकों का अन्त कर देने वाला, नाश कर देनेवाला कहते हैं। इसीलिए मृत्यु को भी **काल** कहते हैं। काल का जो थोड़ा सा मध्य भाग ज्ञात किया जा सकता है, उसमें भी जो बहुत छोटा है वह नापा नहीं जा सकता है, वहीं अमूर्त्त कहलाता है। नापने में जितनी ही सूक्ष्मता होगी अमूर्त काल की परिभाषा भी नई होती जायेगी।

उपर्युक्त महाभारत के आदिपर्व तथा सूर्यसिद्धान्त के इन श्लोकों में काल के सम्पूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। इन श्लोकों में भी काल के उन्हीं दो स्वरूपों की ही चर्चा की गयी है जिन्हें शास्त्रों में अखण्ड व सखण्ड इन दो रूपों में उद्धृत किया गया है। काल का अखण्ड स्वरूप वह है जो भूत, भविष्य, वर्तमान काल खण्ड से भिन्न है। नित्य विद्यमान है एवं सम्पूर्ण सृष्टि के विनाश एवं उत्पत्ति का परम हेतु है। वही परब्रह्म है। वही महाकाल है। सखण्ड काल वह है जो दो व्यापारों क्रियाओं के बीच विद्यमान है, एवं त्रुट्यादि रूप में गणनीय है। यह सखण्ड काल अनित्य है एवं सृष्टि के विलीन होने के साथ-साथ इस (सखण्ड) काल का भी नित्य, लोकोत्तर अखण्ड काल में विलय हो जाता है। इसीलिए महाभारत में कहा है '**संहरतं कालं शमयते कालः**' अर्थात् संहार (समाप्ति) करने वाले इस सखण्ड काल का शमन (विराम अथवा विलय) अखण्ड काल में होता है।

अन्त में काल को दुरतिक्रम अर्थात् अजेय बताया गया है। वस्तुतः कोई भी प्राणी, वनस्पति या जड़ पदार्थ ऐसा नहीं है जो निश्चित अवधि के बाद नष्ट न हो जाए। काल की सीमा अतिक्रम करना असम्भव है। रावण जैसे असुर पर भी काल ने अन्ततः विजय प्राप्त की। भगवान् ने गीता में स्वयं कहा है- **जातस्य ध्रुवोर्मृत्युः** इति। अर्थात् उत्पन्न हुए सम्पूर्ण प्राणि या पदार्थ अवश्य ही मृत्यु अथवा विनाश को प्राप्त होते हैं। यह शाश्वत सत्य है।

सखण्ड काल जो कलनात्मक है उसके शुभ अशुभ प्रकृति का भी उल्लेख उपर्युक्त श्लोको में किया गया है। वस्तुतः काल का शुभ अशुभ होना व्यक्ति सापेक्ष है। एक ही कालखण्ड किसी

व्यक्ति के लिए शुभ तथा दूसरे व्यक्ति के अशुभ हो सकता है। उदाहरण के लिए - नौकरी के लिए चुने गए अभ्यर्थी का काल शुभ है एवं जिस अभ्यर्थी का चयन नहीं है उसका समय प्रतिकूल होने के कारण उस व्यक्ति के लिए वही काल अशुभ है। इस प्रकार समझा जा सकता है।

2.4 अमूर्त्त काल विवेचन -

न मूर्तः अमूर्त्तः। यहाँ 'नञ् समास' है। जिसका कोई मूर्त्त रूप न हो, उसे 'अमूर्त्त' कहते है। सूक्ष्म काल वह खण्ड है जो अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण 'अमूर्त' कहलाता है। इसका प्रयोग सामान्य व्यवहार में नहीं होता है। ''कलयति गणयति अनेन इति कालः'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिस काल की गणना की जा सके अथवा जिसके द्वारा गणना की जा सके उसे कलनात्मक काल कहते हैं। प्रयोग करने के उद्देश्य से यह काल छोटे-बड़े कई विभागों या खण्डों में विभक्त होने के कारण सखण्ड कहलाता है। इस गणनात्मक काल के भी मुख्यतया दो विभाग हैं-1. सूक्ष्म, 2. स्थूल। प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने इस सूक्ष्म काल की प्रथम इकाई 'त्रुटि' को माना था। आधुनिक वैज्ञानिक योक्टोसेकेण्ड, जेप्टोसेकेण्ड, एट्टोसेकेण्ड, नैनोसेकेण्ड इत्यादि को सूक्ष्म काल की इकाइयाँ मानते हैं। स्थूल काल वह खण्ड है जो स्थूल होने के कारण 'मूर्त' कहलाता है। दैनिक जीवन में इसका प्रयोग होने के कारण इसे व्यावहारिक काल भी कहते है। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने स्थूल काल की पहली इकाई 'प्राण' को स्वीकार किया है । वर्तमान समय में माइक्रोसेकेण्ड, सेकेण्ड को स्थूल काल की पहली इकाई माना जाता है।

''प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्यादो अमूर्त्त संज्ञकः।।'' इति।।

अर्थात् मूर्त कालों (स्थूल कालों) में आदि = प्रथम इकाई 'प्राण' को, कथितः = कहा गया है। तथा त्रुटि आदि काल को अमूर्त्त संज्ञक कहा गया है।

सूक्ष्म काल 'अमूर्त्त' कहलाता है। सूक्ष्मता के कारण इसकी सीमा का बोध सामान्य जन को नहीं होता है अतः इसे अमूर्त्त कहते हैं। इस काल का व्यवहार में प्रयोग भी सम्भव नहीं है अतः इसे अव्यवहारिक भी कहते हैं। यथा- 'त्रुटि' 'माइक्रोसेकेण्ड' इत्यादि। ऑख की पलकों को गिरने में जितना समय लगता है उसे **'निमेष'** कहते है। इस निमेष का तीन हज़ारवाँ हिस्सा (निमेष/3000) **'त्रुटि'** कहलाता है। स्पष्ट है कि इतने सूक्ष्म काल की मर्यादा का बोध सामान्यतया असम्भव है अतः इसे अमूर्तकाल कहते है। सूर्यसिद्धान्त में भी 'त्रुटि' को सूक्ष्म काल की प्रथम इकाई बताया गया है।

सिद्धान्तशिरोमणि में आचार्य भास्कराचार्य जी सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा बतलाते हुए 'त्रुटि' काल की बात करते हैं –

त्रुट्यादि प्रलयान्तकालकलना मान प्रभेदा: क्रमात् ....0 ।

सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में भी –

अदृश्यरूपा: कालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिता:।

अर्थात् कालस्य अदृश्यरूपा: जायन्ते, ते मूर्त्तयो: (मूर्त्तामूर्त्त) भगणाश्रिता:। काल अदृश्य रूप में सृष्टि का संचालन करती है, जो मूर्त्तामूर्त्त अर्थात् मूर्त्त और अमूर्त्त रूप में भगणाश्रित हैं। इसी अदृश्य रूप को 'अमूर्त्त काल' के नाम से भी समझ सकते हैं।

बोध प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -

1. सृष्टि के समस्त चराचर प्राणी ..... है?
2. काल शब्द में ..... प्रत्यय है?
3. 1 कल्प में ..... महायुग होते हैं?
4. मृत्यु को भी ..... कहते है?
5. काल: सृजति ..... काल: संहरते प्रजा:?
6. जातस्य ..... ?
7. जिस कालखण्ड का मूर्त्त रूप न हो, उसे ..... काल कहते है ?
8. त्रुटि काल ..... संज्ञक है?
9. आँखों की पलकों को गिरने में जितना समय लगता है, उसे ..... कहते है।

2.4.1 प्रसिद्ध नवविधकालमान का सूक्ष्म परिचय -

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा ।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव ।।

ब्राह्म मानम् – ब्रह्म सम्बन्धिमानं ब्रह्म मानं । ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कल्पद्वयं ब्रह्मा जी की एक अहोरात्र का मान होता है । इसी अहोरात्र के मान से ब्रह्मा की परमायु 100 वर्ष की है । एक कल्प में 1000 महायुग होता है ।

दिव्य मानम् - देवताओं से सम्बन्धित दिव्य मान होता है । मानवों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन के बराबर होता है ।

पैत्र मानम् – पितरों से सम्बन्धित मान को पितृ मान कहते है। मानवों के एक पक्ष के बराबर इनका एक दिन होता है पितरों का निवास स्थान चन्द्रमा के उर्ध्व भाग में है। ऐसा कल्पना प्राचीन ज्योतिर्विदों के द्वारा किया गया है।

प्रजापति मान - प्रजापति सम्बन्धित मान प्रजापति मान होता है।

गुरू मान – वृहस्पति के मध्यम मान से यह मान निकाला जाता है।

सौर मान – सूर्य सम्बन्धित मान को **सौरमान** कहते है।

सावन मान – इनोद्वय द्वयान्तरं तदर्क सावनं दिनम्। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के अन्तर मान को सावन मान के नाम से जाना जाता है।

चान्द्र मान – चन्द्रमा सम्बन्धित मान को चान्द्रमान कहते है। चन्द्रमा के अनुसार इस मान की गणना की जाती है।

नाक्षत्र मान – एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र तक के उदय मान को नाक्षत्र मान कहते है।

2.5 सूक्ष्मकाल-

जैसा कि आपने पूर्व में पढ़ा कलनात्मक काल दो प्रकार का होता है। -

1. **सूक्ष्मकाल, 2. स्थूलकाल**। सूक्ष्मकाल वह कालखण्ड जो सूक्ष्म है, अर्थात् जिसके परिमाण का ज्ञान सामान्य विधि से नहीं किया जा सके, वही सूक्ष्मकाल या अमूर्तकाल है।

भारतीय गणकों ने सूक्ष्मकाल को भी परिभाषित किया था। उन्होंने सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई 'त्रुटि' को माना। पलकों के निमीलन या संयोग में जितना समय लगता है उसका हज़ारवा हिस्सा त्रुटि कहलाता है। त्रुटि से बड़ी सूक्ष्मकाल की इकाई 'रेणु' कहलाती है। रेणु का मान त्रुटि से 60 गुना ज्यादा है। रेणु से 60 गुना बड़ा कालखण्ड 'लव' कहलाता है। लव से 60 गुना बड़ा 'लीक्षक' तथा 60 लीक्षकों का 1 प्राण होता है। यह प्राण स्थूल काल की पहली इकाई है। आधुनिक काल में प्रचलित सेकेण्ड का 4 गुना एक प्राण का मान है। इस सेकेण्ड का 3240000 बत्तीस लाख चालिस हज़ारवाँ हिस्सा 1 त्रुटि है। आइए सूक्ष्मकाल की इन इकाई को हम क्रमशः विस्तार से जानें।

2.5.1 त्रुटि-

जैसा कि आप ने पूर्व में पढ़ा त्रुटि सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई है। त्रुटि की 2 परिभाषाएँ मुख्यतया प्रचलित हैं। जिनमें प्रथम मत नारद का तथा द्वितीय मत भास्कर का है। यहाँ दोनों मत एकैकशः प्रस्तुत किए जा रहे है।

नारद मत में त्रुटि -

प्रथम परिभाषा नारद के द्वारा दी गई है-

''सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिः इत्यभिधीयते।''।

अन्वय-

सूच्या पद्मपत्रे भिन्ने त्रुटिः इति अभिधीयते।

शब्दार्थ - सूच्या = सूई के द्वारा, पद्मपत्रे भिन्ने = कमल के पत्र का भेदन करने पर, त्रुटिः इति अभिधीयते = 'त्रुटि ऐसा कहा जाता है।

व्याख्या- सूई के द्वारा कमल पुष्प के पत्र को छेदने में जितना समय लगता है उस समय की त्रुटि संज्ञा है। कहीं-कहीं पर शतपत्र भेदन काल को 'त्रुटि' कहा गया है। अर्थात् अव्यवहित (व्यवधान रहित) सौ कमल दल को भेदने में जितना समय लगा उसे त्रुटि कहते है।

परन्तु गणित ज्योतिष (सिद्धान्त ज्योतिष) के आकर ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के टीकाकार श्री कपिलेश्वर शास्त्री ने अपने 'तत्वामृत' - नामक टीका में नारद के मत को ही त्रुटि की परिभाषा के रूप में उद्धृत किया है। अतः नारद मत को ही यहाँ आधार मानते हुए सूई के द्वारा 1 कमल दल के भेदन काल को त्रुटि के रूप में स्वीकार किया गया है।

भास्कराचार्य मत में त्रुटि-

भास्कर द्वितीय का जन्म 11 शताब्दी के अन्त में हुआ। भास्कर द्वितीय महान् गणितज्ञ व ज्योतिषी थे। भारतीय ज्योतिष के इतिहास में इन्हें 'भास्कराचार्य' के नाम से जाना जाता है। भास्कराचार्य ने युवावस्था में ही 'सिद्धान्तशिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना की। गणित ज्योतिष (सिद्धान्त ज्योतिष) का पथप्रदर्शक ग्रन्थ होने के कारण इस ग्रन्थ की आज भी प्रतिष्ठा एवं उपयोगिता है।

सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के 4 भाग क्रमशः- 1. **लीलावती, 2. बीजगणित, 3. गणिताध्याय, 4. गोलाध्याय** हैं।

गणिताध्याय में उन्होंने काल की गणना से लेकर स्पष्टग्रह के साधन, ग्रहण, नक्षत्रादि से युति, अस्त इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है।

लीलावती अंकगणित एवं बीजगणित अव्यक्त गणित का ग्रन्थ है। गोलाध्याय खगोल एवं ग्रहों की स्थिति का प्रतिपादन करता है।

गणिताध्याय में काल के निरूपण के प्रसंग में भास्कराचार्य ने 'त्रुटि' की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी है-

''योऽक्ष्णोः निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता त्रुटिः''।

(सिद्धान्तशिरोमणि,गणिता.मध्यमाधिकार)

अन्वय-

अक्ष्णोः यः निमेषस्य खरामभागः स तत्परः तत् शतभागः त्रुटिः उक्ता ।

सरलार्थ-

अक्ष्णोः दोनों पलकों का (जो संयोग काल वह) 'निमेष' कहलाता है। निमेषस्य = उस निमेष का खरामभागः = खराम अर्थात् 30 भाग अर्थात् तीसवाँ हिस्सा, सः = जो (जितना) है वह तत्परः = तत्पर कहलाता है। तच्छतभागः = उसका सौवाँ हिस्सा, त्रुटिः = त्रुटि कहलाता है। इस प्रकार

निमेष = पलकों का संयोग काल

निमेष/30 = तत्पर

तत्पर/100 = त्रुटि

इसलिए त्रुटि = तत्पर/100 = निमेष/3000

त्रुटि सेकेण्ड का बत्तीस लाख चालीस हज़ारवाँ हिस्सा है।

त्रुटि = 1/3240000 सेकेण्ड

इसे आधुनिक गणितीय भाषा में प्रकट करें तो इसे 3.24×10^{-7} सेकेण्ड लिखेंगे जो कि वर्तमान में प्रचलित माइक्रोसेकेण्ड (10^{-6} से.) से छोटा तथा नैनोसेकेण्ड (10^{-9}से.) से 100 गुना बड़ा है।

अतः त्रुटि = 1/3240000 सेकेण्ड = 3.24 ग 10^{-7} सेकेण्ड।

2.5.2 रेणु-

रेणु त्रुटि से परिमाण में 60 गुना बड़ा कालखण्ड है। इसकी परिभाषा नारद के अनुसार इस प्रकार है-

..... त्रुटिरित्यभिधीयते।

तत्षष्ट्या रेणुरित्युक्तो.....इति।।

अन्वय -

तत्षष्ट्या रेणुः इति उक्तः।

सरलार्थ -

तत्षष्ट्या- उसका अर्थात् त्रुटि का 60 गुना रेणुः इति उक्तः- रेणु कहा गया है।

त्रुटि × 60

वर्तमान में प्रचलित कालखण्ड के अनुसार रेणु का मान कितना होगा? आपके मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

जैसा कि पूर्व में आपने पढ़ा त्रुटि = 1/3240000 त्र 3ग10.7 सेकेण्ड

1 रेणु = 60 त्रुटि

= 60 × 1/3240000 सेकेण्ड

1 रेणु = 1/54000 सेकेण्ड = 5.4×10^{-5} सेकेण्ड

अर्थात् सेकेण्ड का चौवनवाँ हिस्सा रेणु कहलाता है। इसे आधुनिक गणितीय भाषा में 5.4 ×10.5 सेकेण्ड भी कह

सकते हैं। इस प्रकार रेणु माइक्रोसेकेण्ड (10-6) से थोड़ा बड़ा एवं मिलीसेकेण्ड (10-3) से लगभग हजार गुना

छोटा है।

2.5.3 तत्पर-

तत्पर का उल्लेख 1.5.1 में किया गया है, जिसे यहाँ आप विस्तार पूर्वक पढ़ेगें।

तत्पर की परिभाषा भास्कराचार्य ने इस प्रकार से दी है-

''**निमेषस्य खरामभागः स तत्परः**'' इति।।

निमेष का खराम भाग तत्पर कहलाता है। खराम इस शब्द में दो पद 'ख' एवं 'राम' है। 'ख' का अर्थ आकाश या शून्य (0) है। 'राम' का अर्थ 3 है क्योंकि इतिहास में तीन रामों - राम, बलराम और परशुराम का ही उल्लेख मिलता है। यहाँ ख अर्थात् 0 इकाई एवं राम अर्थात् 3 दहाई के स्थान पर रखने से 30 संख्या आती है। अतः खराम से 30 संख्या का बोध होता है। अतः निमेष का खराम भाग अर्थात् तीसवॉ हिस्सा तत्पर कहलाता है।

निमेष/30 = तत्पर

तत्पर का मान आधुनिक गणित में कितना है? इसके ज्ञान के लिए हमें सर्वप्रथम निमेष का मान जानना आवश्यक है। अतः आइए इस का मान जानते हैं।

2.5.4 निमेष-

निमेष की चर्चा पहले की जा चुकी है। पूर्व में आपने पढ़ा कि पक्षपात अर्थात पलकों के संयोग को निमेष कहते हैं। निमेष का तीन हज़ारवाँ हिस्सा त्रुटि है। इस आधार पर निमेष का आधुनिक गणितीय मान जाना जा सकता है।

त्रुटि = निमेष/3000

निमेष = 3000 त्रुटि = 3000×1/3240000

निमेष = 1/1080 सेकेण्ड

=.8 ग 10.¯3 सेकेण्ड

इस प्रकार निमेष मिलिसेकेण्ड से कुछ छोटा तथा माइक्रोसेकेण्ड से 1000 गुना बड़ा होता है।

पूर्व में आपने जाना कि तत्पर निमेष का 30वाँ हिस्सा कहलाता है, अतः

तत्पर = 1/1080 × 30 त्र 1/32400 सेकेण्ड

आधुनिक गणितीय परम्परा में तत्पर को 3.24×10^{-5} सेकेण्ड इस रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार तत्पर माइक्रोसेकेण्ड से थोड़ा ही छोटा होता है।

2.5.5 लव-

आपने त्रुटि व रेणु के बारे में पहले पढ़ा। जिस प्रकार त्रुटि का 60 गुना रेणु होता है। उसी प्रकार रेणु का 60 गुना 'लव' होता है।

नारद के मतानुसार -

''रेणुषष्ट्या लवः स्मृतः'' इति।

रेणुषष्ट्या = षष्टि अर्थात् साठ (60), 60 रेणु के द्वारा, लवः स्मृतः = लव कहा गया है (समझना चाहिए)।

= 1 लव = 60 रेणु

= 60 × 1/54000 सेकेण्ड

= 1/900 सेकेण्ड

इस प्रकार लव सेकेण्ड का 900वाँ हिस्सा है। इसे 9×10^{-2} सेकेण्ड भी कह सकते है। इस प्रकार लव मिलीसेकेण्ड से थोड़ा ही बड़ा और माइक्रोसेकेण्ड से दस हज़ार गुना छोटा कालमान है।

2.5.6 लीक्षक-

लीक्षक का मान लव से भी ज्यादा होता है। लीक्षक लव से 60 गुना बड़ा होता है। नारद ने लीक्षक की परिभाषा इस प्रकार की है-

''तत्षष्ट्या लीक्षकं प्रोक्तम्'' इति।।

तत् - जो पूर्व में कथित 'लव' नामक कालखण्ड है उसका, षष्ट्या - 60 गुना, लीक्षकं प्रोक्तम् –

'लीक्षक' कहा गया है।

अतः 1 लीक्षक = 60 लव

= 60 ग 1/900 सेकेण्ड

= 1/54 सेकेण्ड

इस प्रकार सेकेण्ड का 54वाँ हिस्सा **लीक्षक** कहलाता है। अर्थात् यदि सेकेण्ड के 54 बराबर भाग किए जाएं तो एक भाग 1 लीक्षक के तुल्य होगा। इस प्रकार लीक्षक का मान आधे सेकेण्ड से भी कम होता है। यही लीक्षक जब 60 हो जाते हैं तो स्थूल काल की प्रथम इकाई प्राण के बराबर होते हैं। अतः 1 प्राण = 4 सेकेण्ड।

इस प्रकार ये त्रुट्यादि काल सूक्ष्मकाल के रूप में प्रचलित थे। जिनका व्यवहार में प्रयोग नहीं होता था। सूक्ष्मकाल की आदि इकाई त्रुटि आज के माइक्रोसेकेण्ड से भी छोटी इकाई है। इसी प्रकार सूक्ष्मकाल की सबसे बड़ी इकाई लीक्षक है जो आधे सेकेण्ड से भी छोटी है।

नारद पुराण में वर्णित सूक्ष्मकाल की ये परिभाषाएँ तत्कालीन भारतीय मनीषियों गणितज्ञों के सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देती है।

2.6 आधुनिक सूक्ष्मकाल -

वर्तमान समय में प्रयुक्त सूक्ष्मकाल निम्नलिखित हैं-

1. योक्टोसेकेण्ड = 10^{-24} सेकेण्ड

वर्तमान गणित में सेकेण्ड के दसवें हिस्से को प्रदर्शित करने के लिए 10^{-1} सेकेण्ड इस पद्धति का प्रयोग करते है। सेकेण्ड के सौंवे हिस्से के लिए 10^{-2},हज़ारवाँ हिस्सा हो तो उसे 10^{-3} दसहज़ारवाँ 10^{-4} लाखवाँ 10^{-5} दसलाखवाँ 10^{-6} इस क्रम से प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार आप कल्पना कीजिए की जिस कालखण्ड का मान, 10.24 सेकेण्ड है वो सेकेण्ड का कितना छोटा हिस्सा होगा।

2. ज़िफ्फी = 3×10^{-24}

वस्तुतः यह भौतिकशास्त्र में प्रचलित कालखण्ड है। निर्वात में स्थित न्यूक्लियन में प्रवेश करने के लिए प्रकाश को जितना काल लगता है उसे ही 'ज़िफ्फी' कहते है। गणित के द्वारा इस कालखण्ड का आकलन किया गया है, किन्तु इतने छोटे कालखण्ड को अभी तक मापा नहीं जा सकता है।

3. एट्टोसेकेण्ड = 10^{-18} सेकेण्ड

वर्तमान समय में यह कालखण्ड सबसे छोटा है जिसको मापने का यन्त्र वैज्ञानिक प्रयोग में लाते

4. फेम्टोसेकेण्ड = 10^{-15} सेकेण्ड

5. पीकोसेकेण्ड = 10^{-12} सेकेण्ड

अर्थात् सेकेण्ड के खरबवें हिस्से को पीकोसेकेण्ड कहते है।

6. नैनोसेकेण्ड =10^{-9}

अर्थात् सेकेण्ड के करोड़वें हिस्से को नैनोसेकेण्ड कहते है। बल्ब इत्यादि कृत्रिम प्रकाश के कणों को विद्युत प्रवाह के उपरान्त उद्दीप्त होने में एक नैनोसेकेण्ड का समय लगता है।

7. माइक्रोसेकेण्ड = 10^{-6} सेकेण्ड

सेकेण्ड के लाखवें हिस्से को माइक्रोसेकेण्ड बोलते हैं।

8. मिलिसेकेण्ड = 10^{-3} = 1/1000 सेकेण्ड

सेकेण्ड के हज़ारवें हिस्से को मिलिसेकेण्ड कहते है।

9. सेण्टीसेकेण्ड = 10^{-2} सेकेण्ड = 1/100 सेकेण्ड

सेकेण्ड के सौवें हिस्से को सेण्टीसेकेण्ड कहते है।

10. डेसीसेकेण्ड =10^{-1} सेकेण्ड = 1/10 सेकेण्ड

सेकेण्ड के दसवें हिस्से को डेसीसेकेण्ड कहते है।

बोध प्रश्न – 2

1. निम्नलिखित में ब्रह्मा जी की आयु है ?
   क. १ कल्प ख. २ कल्प ग. ३ कल्प घ. ४ कल्प
2. मानवीय एक पक्ष के बराबर पितरों का होता है ?
   क. १ दिन ख. २ दिन ग. ३ दिन घ. ४ दिन?
3. सूर्योदय द्वय का अन्तर होता है?
   क. २ सावन दिन ख. १ चान्द्र दिन ग. १ सावन दिन घ. कोई नहीं
4. लव से कितना गुणा बड़ा लीक्षक होता है?
   क. १० गुणा ख. २० गुणा ग. ५० गुणा घ. ६० गुणा
5. राम का अर्थ होता है?
   क. २ ख.१ ग. ३ घ.४
6. रेणु × ६० = ?
   क. लव ख. लीक्षक ग. तत्पर घ. निमेष

2.7 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ''कलयति इति कालः'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जो गणना करने के योग्य है उसे काल कहते हैं। काल मुख्यतया 2 प्रकार का होता है। 1. संहारक काल एवं 2. गणनात्मक काल। पहला काल नित्य है, अखण्ड है, गतिशील है एवं सृष्टि की उत्पत्ति व विनाश का कारक है। यह सृष्टि के साथ-साथ सखण्ड (गणनात्मक) काल का भी अन्त करता है। जिस कालखण्ड का मूर्त्त रूप न हो, उसे अमूर्त्त काल कहते है। सूर्यसिद्धान्त एवं महाभारत में वर्णित काल के स्वरूप की भी इस पाठ में चर्चा की गई है। काल का दूसरा स्वरूप कलनात्मक या गणनात्मक है। यह काल भी 1. सूक्ष्म, 2. स्थूल इन 2 भेदों में विभक्त है। सूक्ष्मकाल वह है जो परिमाण में अत्यन्त छोटा है। सामान्यतया उसके परिमाण का (सीमा का) बोध नहीं होता है अतः उसे अमूर्त काल भी कहते हैं। प्राचीन भारतीय ज्योतिष में सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई त्रुटि मानी गई है। सूई के द्वारा कमल पत्र के भेदन में जितना समय लगता है वही त्रुटि कहलाता है। आधुनिक मान के अनुसार त्रुटि सेकेण्ड का बत्तीसलाख चालीस हज़ारवाँ हिस्सा है। त्रुटि से बड़ा रेणु उससे बड़ा तत्पर, तत्पर से बड़ा लव, लव से बड़ा निमेष, निमेष से बड़ा लीक्षक होता है। आधुनिक गणित में तो योक्टोसेकेण्ड (10^{-24} सेकेण्ड), एट्टोसेकेण्ड (10^{-18} सेकेण्ड), पीकोसेकेण्ड (10^{-12}), नैनोसेकेण्ड (10^{-9} सेकेण्ड) माइक्रोसेकेण्ड (10^{-6} सेकेण्ड), मिलीसेकेण्ड (10^{-3} सेकेण्ड) थे सारी सूक्ष्मकाल की इकाइयाँ हैं।

इस प्रकार इस पाठ के अध्ययन से आप काल की अवधारणा, उसके भेद एवं सूक्ष्मकाल को अच्छी तरह जान सकेंगे।

2.8 पारिभाषिक शब्दावली-

1.	भूतानि	-	प्राणियों को
2.	पचति	-	पकाता है। (अन्तिम अवस्था तक पहुचाता है)।
3.	सहात्मना	-	अपने साथ।
4.	कन्ते	-	प्रलय आने पर।
5.	सपक्वः	-	पके हुए के साथ।
6.	लयं	-	लीनता को (लुप्तावस्था को, विनाश को)।
7.	व्रजेत्	-	जाता है (प्राप्त होता है)।
8.	सृजति	-	उत्पन्न करता है।

9.	संहरते	-	संहार (नष्ट) करता है।
10.	शमयते	-	शान्त करता है (समाप्त करता है)।
11.	अन्तकृत्	-	अन्त (संहार) करने वाला।
12.	कलनात्मकः	-	कलना (गणना) करने के योग्य।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर-

बोध प्रश्न -1 का उत्तर

1. कालाभिभूत
2. घञ्
3. १०००
4. काल
5. भूतानि
6. ध्रुवोर्मृत्युः
7. अमूर्त्त
8. अमूर्त्त
9. निमेष

बोध प्रश्न -2 का उत्तर

1. ख
2. क
3. ग
4. घ
5. ग
6. क

2.10 सहायक पाठ्यसामग्री

1. सिद्धान्त शिरोमणि, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. सूर्यसिद्धान्त, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. प्राचीनभारतीयगणित, ब.ल.उपाध्याय।

4. सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव। विज्ञान भाष्य।

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सूर्यसिद्धान्त, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. नारद पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. सिद्धान्तशिरोमणि, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर। (महाभारत आ.प.अ.1,श्लोक 248-250)

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अमूर्त्त काल की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
2. लोकानामन्तकृत काल: .... श्लोक की स्पष्ट व्याख्या कीजिये।
2. त्रुटि को परिभाषित करते हुए लव और रेणु से उसका सम्बन्ध बताईये।
3. तत्पर, निमेष एवं लीक्षक क्या है? स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 3 मूर्त्त काल विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मूर्त्त काल परिचय

3.4 मूर्त्त काल एवं आधुनिक पाश्चात्य काल में साम्यता

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई – 502 के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – मूर्त्त काल विवेचन। इससे पूर्व की इकाई में आपने अमूर्त्त काल का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में मूर्त्त काल का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सामान्यतया मूर्त्त काल वह काल है, जिसका हम व्यवहार में प्रयोग करते है। मूर्त्त का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप में व्यावहारिक जीवन से है।

आइए अब हम सब इस इकाई में मूर्त्त काल का अध्ययन विस्तारपूर्वक करते हैं, जिससे आपको तत्सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- मूर्त्त काल किसे कहते है।
- मूर्त्त काल का स्वरूप कैसा होता है।
- मूर्त्त काल के अन्तर्गत काल के कौन-कौन सा अंग आता है।
- व्यवहार में मूर्त्त काल का क्या प्रयोजन है।

3.3 प्राणादि मूर्त्तकाल

काल अनादि और अनन्त है। काल सृष्टि की शाश्वत सत्ता है, जिसके सापेक्ष समस्त प्राणी लोक में व्याप्त होकर अपने-अपने जीवन का निर्वहन करते हैं। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है - ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।।'' काल के विभिन्न स्वरूपों में हम इस इकाई में 'मूर्त्त काल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। अत: आइए यहाँ सर्वप्रथम मूर्त्त काल को समझते है -

'मूर्त्त' से तात्पर्य चाक्षुष सन्निकर्ष प्रतीयमान से है। अर्थात् जो हमें दिखलाई देती है अथवा जिसका हम दैनिक जीवन में उपयोग करते है। भावार्थ यही है। मूर्त्त का शाब्दिक अर्थ है- साकार अर्थात् आकार सहित। जैसे कि हम व्यावहारिक जीवन में कहते है कि मुझे उसके मूर्त्त रूप (साकार) का दर्शन हो गया। शिल्पकार मूर्ति को मूर्त्त रूप प्रदान करता है, जिसे हम अपने चक्षु से साक्षात् अवलोकन कर उसकी मीमांसा करते है अथवा करने लगते है। अमूर्त्त में हमें वह (काल) प्रत्यक्षतया दिखलाई नहीं पड़ता है।

प्राणादि मूर्त्तकाल व्यवहार योग्य है, इसलिये इसे 'मूर्त्त काल' कहते है। अमूर्त्त काल के बारे में आपने पूर्व की इकाई में जान लिया है। अत: यहाँ दोनों के सापेक्ष बाते करते हैं। मूर्त्त- अमूर्त्त काल के दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है, न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही काल कलनात्मक काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। यह ध्रुव सत्य है और इसी शाश्वतता के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे 'अन्तकृत काल' कहा जाता है। इस प्रकार जो इकाई सृष्ट्यारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये है।

सृष्टि एक शाश्वत प्रक्रिया है। सृष्ट्यन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम 'कल्प' कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि का विलय कर विश्राम करते हैं। ब्रह्मा जी के लिए कल्प का एक दिन होता तथा उसी एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि भी होती है। इस प्रकार ब्रह्मा के एक अहोरात्र में दो कल्प होते हैं। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ–साथ सृष्ट्यारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत् ही रहता है। जैसा कि श्रुति (वेद) भी कहती है – ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।।'' सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि की रचना में ब्रह्मा जी को 47400 दिव्यवर्ष का समय लगता है। यथा सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में कहा गया है –

''ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा शतघ्ना वेधसो गता:''।

अत: सृष्ट्यन्त और कल्पान्त दोनों ही काल की एक महत्तम इकाई के पर्याय है। इसी प्रकार स्थूल काल की लघुतम इकाई प्राण तथा सूक्ष्म काल की लघु इकाई त्रुटि कही गई है। यहाँ प्राणादि मूर्त्त काल का विवेचन करते है।

3.4 मूर्त्त काल एवं आधुनिक पाश्चात्य काल में साम्यता

ज्योतिष शास्त्र में कथित मूर्त्तकाल (भारतीय काल) एवं पाश्चात्य काल (आधुनिक काल) में साम्यता –

मूर्त्तकाल (भारतीय काल:)	**पाश्चात्य काल**
1 प्राण (असु) = 10 दीर्घाक्षरोच्चारणकाल = 10 विपल =	4 सेकेण्ड

1 पल (विघटी) = 6 प्राण = 60 विपल	=	24 सेकेण्ड = 2/5 मिनट
ढाई पल	=	1 मिनट
1 विपल = 1 दीर्घाक्षरोच्चारण काल = प्राण / 10	=	2/5 सेकेण्ड
1 नाडी (घटी) = 60 पल = 1 दण्ड	=	24 मिनट
1 नाक्षत्र अहोरात्र = 60 नाडी = 60 दण्ड	=	24 घण्टा
ढाई नाडी = 5/2 दण्ड	=	1 घण्टा
1 मास = 30 अहोरात्र	=	1 मन्थ
1 वर्ष = 12 मास	=	1 इयर

इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में काल के मुख्यत: दो भेद किये गये है – 1. प्राणियों का अन्त करने वाला (महाकाल) और 2. गणनात्मक काल (जिस काल की गणना की जाती है)। गणनात्मक काल के भी दो भेद किये गये हैं – 1. स्थूल काल और 2. सूक्ष्म काल।

स्थूल काल को ही 'मूर्त्त काल' भी कहते है। जैसा कि सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में कहा गया है-

प्राणादि: कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञक:।
षडभि: प्राणैर्विनाडी स्यात् तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता॥
नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत् त्रिंशता भवेन्मास: सावनोऽर्कोदयैस्तथा॥

(मध्यमाधिकार, श्लोक -11,12)

जिस काल की गणना पद्धति में सबसे छोटी इकाई प्राण हो वह प्राणादि काल है। प्राणादि काल को मूर्त्तकाल कहा गया है। प्राण का पर्याय असु है। जैसे –

1 प्राण = सामान्य (स्वस्थ) व्यक्ति के श्वॉस लेने एवं छोड़ने का समय = दस दीर्घ उच्चारण काल =10 विपल = 4 सेकेण्ड।

या 1 प्राण = 10 विपल = 4 सेकेण्ड

6 प्राण = 10 × 6 = 60 विपल = 24 सेकेण्ड = 1 पल

1 पल (6 प्राण) = 60 विपल = 24 सेकेण्ड

ढाई पल = 1 मिनट

1 विपल = 1 दीर्घ अक्षर का उच्चारण काल = प्राण / 10 = 4 / 10 से ट 2/5 सेकेण्ड

60 पल = 1 नाड़ी = 1 दण्ड या एक घटी = 24 मिनट

नाड़ी, दण्ड, घटी ये तीनों समान काल का ही बोध कराते हैं।

60 घटी = 60 नाड़ी = 60 दण्ड = 24 घण्टा = 1 नाक्षत्र अहोरात्र

ढाई घटी = 5 घटी = 1 घण्टा

30 अहोरात्र = 1 मास

12 मास = 1 वर्ष

उपरिलिखित काल मान स्थूल (मूर्त्त) कालगणना पद्धति के है।

मूर्त्तामूर्त्त कथन की व्याख्या

सः स्थूलसूक्ष्मत्वात् द्विधा मूर्त अमूर्तश्च उच्यते।

शब्दार्थ -

कलनात्मक (सखण्ड) काल, स्थूलसूक्ष्मत्वात् = स्थूल और सूक्ष्म रूप में होने के कारण, द्विधा = 2 प्रकार का होता है, जो क्रमशः, मूर्तश्चामूर्त उच्यते = 'मूर्त' और 'अमूर्त' इस नाम से कहा जाता है।

व्याख्या-

स्थूल को मूर्त कहा गया है। यद्यपि काल ऐसी वस्तु नहीं है जिसके स्वरूप का रेखांकन करना सम्भव हो। तथापि यह काल खण्ड ऐसा है जिसकी मर्यादा (सीमा) का बोध सभी सामान्य लोगों को होता है। अतः अमुक काल खण्ड की सीमा कहॉ तक है एवं कब इसका अतिक्रमण हो रहा है? इन दोनों ही प्रश्नों का बोध जिस काल खण्ड के निमित्त (लिए) हो सके वही काल मूर्त है, स्थूल है। यथा- सेकेण्ड, मिनट घण्टा इत्यादि इन काल खण्डों की सीमाएं ज्ञात होने के कारण ये स्थूल या मूर्त कहलाती है एवं व्यवहार में इनका प्रयोग किया जाता है। प्राचीन गणकों ने 'प्राण' को स्थूलकाल की प्रथम इकाई माना। जैसे कि सूर्यसिद्धान्त में वर्णित है- **''प्राणादिः कथितो मूर्तः''** इति।।

अर्थात् मूर्त कालों (स्थूल कालों) में आदि = प्रथम इकाई 'प्राण' को, कथितः = कहा गया है।

सिद्धान्तशिरोमणि में आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी काल विभाग की कल्पना करते हुये लिखा है कि –

योऽक्षणोर्निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकैः कालोत्ता।।
त्रिंशत्कलार्क्षी घटिका क्षणः स्यान्नाडीद्वयं तै खगुणैर्दिनं च।
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षडभिः पलं तैर्घटिका खषडभिः।।
स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्।

क्षेत्रे समाद्येन समा विभागा: स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ता। ।।

आचार्य जी ने इस श्लोक में कालविभाग को परिभाषित किया है। जिसका वर्णन इस प्रकार है - पलक झपकने में जितना समय लगता है उसको एक निमेष कहते हैं। एक निमेष का तीसवॉ भाग तत्पर होता है। तत्पर के शतांश को त्रुटि कहते हैं। 18 निमेष का एक काष्ठ होता है। 30 काष्ठ की एक कला होती है । 30 कला की एक घटी होती है। दो घटी का एक मूहूर्त्त होता है। 30 क्षण का एक दिन होता है।

इसके पश्चात् प्रकारान्तर से दिनादि को इस प्रकार परिभाषित किया है। दस गुरू दीर्घ अक्षरों के उच्चारण का समय एक असु (प्राण) होता है। जिस अक्षर के विसर्ग के अंत में अनुस्वर लग जावे उसे दीर्घ अक्षर कहते हैं अर्थात् एक मात्रा का 'लघु' तथा दो मात्रा का अक्षर 'गुरू' कहलाता है। प्राण या असु वह होता है, जितने समय में कोई व्यक्ति एक स्वास – प्रश्वास लेताहै। 6 असु का एक पल होता है और 60 पल की एक घटी तथा 60 घटी का एक दिन होता है। एक चक्र में 12 राशि, एक राशि में 30 अंश , एक अंश में 60 कला तथा एक कला में 60 विकला होता है।

बोध प्रश्न -

1. काल अनादि और ..... है ?
2. मूर्त्त का शाब्दिक अर्थ है ..... ?
3. कलनात्मक काल ..... प्रकार का होता है ?
4. 1 भचक्र = ?
5. 1^0 = ?
6. ज्योतिष के अनुसार काल के मुख्यत: कितने भेद है ?
7. 1 कला = ?
8. 1 वर्ष में कितने मास होते है?
9. 1 राशि में कितने अंश होते है ?

ज्योतिषषास्त्र में प्रमुख रूप से काल के नवभेद बताये गये है । जो इस प्रकार हैं –

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम् ।

सौरं च सावनं चान्द्रमर्क्षं मानानि वै नव ।।

अर्थात् 1. ब्राह्म 2. दिव्य 3. पैत्र्य 4. प्राजापत्य 5. गौरव (गुरू सम्बन्धी) 6. सौर 7. सावन 8. चान्द्र तथा 9. नाक्षत्र ये नव मान कहे गये हैं । यद्यपि ये मान कालभेद के रूप में कहे गये हैं , किन्तु ये

सभी मान मात्र मापक हैं। इन्हें कालमापक इकाईयों का भेद मानना चाहिये। जैसे किसी दीवार को मापने के लिये हम अंगुल और हस्त का भी प्रयोग कर सकते है। इंच और फुट का अथवा सेन्टीमीटर और मीटर का भी प्रयोग कर सकते हैं। माप्य दीवार एक ही है तथा मापक उपकरण भिन्न – भिन्न हैं। इसी प्रकार काल एक ही अनादि – अनन्त है। उसे मापने के लिये हम कभी सूर्य, कभी चन्द्र , कभी वृहस्पति आदि का उपयोग करते हैं। आचार्य भास्कर ने भी सिद्धान्त लक्षण में कहा है – ''त्रुट्यादि प्रलयान्त कालकलना मान: प्रभेद: क्रमात् '' त्रुटि से आरम्भ कर प्रलयान्त काल तक गणना तथा उनके मानों अर्थात् मापकों के भेदोंका विवेचन सिद्धान्त में किया जाता है। काल की गति के विषय में मतान्तर मिलते है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल सीधी रेखा में गतिशील रहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल भी चक्र भ्रमण करता है। इसीलिए इसे कालचक्र भी कहा जाता है। नेपाल और तिब्बत में कालज्योतिष नाम से ज्योतिष की एक प्रमुख विधा है। साहित्यकारों ने काल के चक्र भ्रमण को इंगित करते हुये लिखा है -

''चक्रारपंक्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्ति: ।।''

कालमापन हेतु जिन नव मानों का उल्लेख किया गया है उनमें से चार कालमान हमारी दिनचर्या से जुड़े हुये हैं। वे हैं सौर – चान्द्र - सावन और नाक्षत्र। जब हमे मास से अधिक काल की गणना करनी होती है तब हम सौर मान का प्रयोग करते हैं। सूर्य एक मास तक एक राशि में रहता है। 12 राशियों में भ्रमण करने में 12 मास अर्थात एक वर्ष लगता है मास की गणना हम चान्द्रमास से करते है। दिन की गणना हम पृथ्वी के दिन अथवा सावन दिन से करते हैं दो सूर्योदय के मध्य का काल सावन दिन या पृथ्वी का दिन होता है। एक नक्षत्र के उदय काल से द्वितीय उदय काल तक नाक्षत्र काल होता है। इस काल की अवधि सुनिश्चित है। 60 घटी (ठीक 24 घण्टे) बाद यह परिभ्रमण कर पुन:उसी बिन्दु पर आ जाता है। इसलिए नाक्षत्र दिन का मान सदैव एक समान 24 घण्टे या 60 घटी का ही होता है। इसी स्थिर काल के आधार पर घण्टा मिनट का विचार किया जाता है या घटी पल आदि लघु काल खण्डों का विभाजन या गणना की जाती है। इस काल विभाजन व्यवस्था को आचार्य भास्कर ने अपनी प्रसिद्ध रचना सिद्धान्त शिरोमणि में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है -

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्
मासांस्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।
यत्कृच्छसूतकचिकित्सितवासराद्यम्
तत् सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात् ।।

घटयादि लघुकालखण्डों की गणना नाक्षत्र मान के अतिरिक्त अन्य सौरादि मानों से सम्भव नहीं

हैं, उन मानों के प्रतिदिन न्यूनाधिक होने के कारण। नाक्षत्र काल में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि इसका मान 60 घटी या 24 घण्टे का प्रतिदिन होता है। घटी यन्त्र द्वारा सूचित काल नाक्षत्र काल ही होता है, प्रतिदिन समान रूप होने के कारण। इस प्रकार आवश्यकतानुसार विभिन्न कालमानों का उपयोग होता रहा है तथा आज भी हो रहा है। दैनिक उपयोग में आने वाले कालमानों का विवरण इस प्रकार है –

काल के अवयव –

अमूर्त्त काल	**मूर्त काल**
पद्म पत्र भेदनकाल = 1 त्रुटि	6 विपल = 1 प्राण
60 त्रुटि = 1 रेणु	60 विपल = 1 पल
60 रेणु = 1 लव	60 पल = 1 घटी
60 लव = 1 लीक्षक	60 घटी = 1 अहोरात्र
60 लीक्षक = 1 प्राण	30 अरोरात्र = 1 मास
	12 मास = 1वर्ष

घण्टा मिनट और घटी पल

24 सेकेण्ड = 60 विपल = 1 पल

24 मिनट = 60 पल = 1 घटी

24 घण्टा =60 घटी = 1 अहोरात्र

काल की बड़ी इकाई –

कृतयुग = 1728000 सौर वर्ष

त्रेतायुग = 1296000 सौर वर्ष

द्वापरयुग = 864000 सौर वर्ष

कलियुग = 432000 सौर वर्ष

महायुग = 4320000 सौर वर्ष

मनु = 306720000 सौर वर्ष

कल्प = 4320000000 सौर वर्ष

ब्राह्म अहोरात्र = 8640000000 सौर वर्ष

काल की इन बड़ी इकाइयों की गणना सौरमान से ही की गई है। इनके अतिरिक्त सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है –

सौरेण द्युनिशोर्मानम् षडशीतिमुखानि च।

अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्तेः पुण्यकालताम्॥

अर्थात् सौर अहोरात्रों के साथ – साथ षडशीतिमुख संक्रान्तियों के दिनों,अयनों एवं विषुव दिनों तथा संक्रान्तियों के पुण्य कालों का निर्णय भी सौरमान से ही करना चाहिये।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि काल अनादि और अनन्त है। काल सृष्टि की शाश्वत सत्ता है, जिसके सापेक्ष समस्त प्राणी लोक में व्याप्त होकर अपने-अपने जीवन का निर्वहन करते हैं। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है - ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:॥'' काल के विभिन्न स्वरूपों में हम इस इकाई में 'मूर्त्त काल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। अत: आइए यहाँ सर्वप्रथम मूर्त्त काल को समझते है -

'मूर्त्त' से तात्पर्य चाक्षुष सन्निकर्ष प्रतीयमान से है। अर्थात् जो हमें दिखलाई देती है अथवा जिसका हम दैनिक जीवन में उपयोग करते है। भावार्थ यही है। मूर्त्त का शाब्दिक अर्थ है- साकार अर्थात् आकार सहित। जैसे कि हम व्यावहारिक जीवन में कहते है कि मुझे उसके मूर्त्त रूप (साकार) का दर्शन हो गया। शिल्पकार मूर्ति को मूर्त्त रूप प्रदान करता है, जिसे हम अपने चक्षु से साक्षात् अवलोकन कर उसकी मीमांसा करते है अथवा करने लगते है। अमूर्त्त में हमें वह (काल) प्रत्यक्षतया दिखलाई नहीं पड़ता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

अनादि - जिसका कोई आदि (आरम्भ) न हो

अनन्त – जिसका कभी अन्त नहीं होता है, उसे अनन्त कहते है।

सृजति – सृजन करता है।

संहर्त्ता – संहार करने वाला

मूर्त्त – व्यावहारिक काल

कृताद्रिवेदा – 474

महाकाल – सृष्टि का विनाश कर्त्ता

गणनात्मक – जिसकी गणना किया जा सके

खराम – 30

असु – प्राण

पद्मपत्र – कमल का पत्ता

आर्क्ष – नाक्षत्र

3.7 बोध प्रश्न के उत्तर

1. अनन्त
2. साकार
3. दो
4. 1 राशि
5. 60 कला
6. 2
7. 60 विकला
8. 12
9. 30^0

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मूर्त्त काल से आप क्या समझते है?
2. प्राणादि मूर्त्त काल का वर्णन कीजिये।
3. भारतीय काल एवं पाश्चात्य काल में क्या अन्तर है?स्पष्ट कीजिये।
4. काल की महत्ता पर प्रकाश डालिये।
5. मूर्त्त काल पर निबन्ध लिखिये।

इकाई – 4 ग्रहकक्षा एवं भचक्र व्यवस्था

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 ग्रहकक्षा परिचय

4.4 भचक्र व्यवस्था

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-502 के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहकक्षा एवं भचक्र व्यवस्था। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने काल स्वरूप, मूर्त्तामूर्त काल का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में ज्योतिष शास्त्र में वर्णित ग्रहकक्षा एवं भचक्र व्यवस्था का अध्ययन करने जा रहे है।

वह पथ जहाँ ग्रह भ्रमण करते हैं, उसे पथ को कक्षा के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार ग्रहों की कक्षा को 'ग्रहकक्षा' कहा जा सकता है। 'भ' अर्थात् राशि राशिचक्र को भचक्र के नाम से जानते है। 'भ' का शाब्दिक अर्थ नक्षत्र भी होता है।

आइए अब हम इस इकाई में ग्रहकक्षा एवं भचक्र से सम्बन्धित विषयों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- बता सकेंगे कि ग्रहकक्षा किसे कहते है।
- भचक्र व्यवस्था को समझा सकेंगे।
- प्राच्य- पाश्चात्य मतेन ग्रहकक्षा को स्पष्ट रूप से समझ लेंगे।
- भचक्र व्यवस्था में विशेष को बतला सकेंगे।

4.3 ग्रहकक्षा परिचय

ग्रह ज्योतिषशास्त्र का मूल है, जिसके बिना हम ज्योतिष शास्त्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर ही आधारित है। यहाँ तक की आचार्यों द्वारा ज्योतिष की स्थूल परिभाषा में 'ग्रहगणितं ज्योतिषम्' कहा गया है। सृष्ट्योत्पत्ति के समय ब्रह्मा जी ने जब ग्रह एवं नक्षत्रों का निर्माण किया था उस समय प्रमुख ग्रहों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में वर्णित है –

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ तत्स्त्वङ्गारकादय:।
तेजो भूरवाम्बुवातेभ्य: क्रमश: पंच जज्ञिरे।।

अर्थात् अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमा की उत्पत्ति के पश्चात् तेज अर्थात् अग्नि से मंगल, पृथ्वी से बुध, आकाश से वृहस्पति एवं शुक्र और वायु से शनि उत्पन्न हुए। इसी क्रम में नक्षत्रों एवं राशियों का भी निर्माण किया। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड में ग्रहों कों उनकी कक्षाओं में स्थापित

किया। जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया है –

ब्रह्माण्डमध्यपरिधि र्व्योमकक्ष्याऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानां तदधोऽध: क्रमादथ।।
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दव:।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्तात्सिद्धविद्याधरा घना:।।
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राण: परमां शक्ति ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्।।

श्लोकार्थ है कि ब्रह्माण्ड की परिधि को आकाश कक्षा कहते हैं जिसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते हैं, फिर उसके नीचे क्रमानुसार शनि, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा भ्रमण करते हैं। इसके नीचे सिद्ध, विद्याधर और मेघ है। इस ब्रह्माण्ड के बिल्कुल बीच में यह भूगोल ब्रह्मा की धारिणात्मिका परम शक्ति के बल पर शून्य में स्थित है।

इस प्रकार इन श्लोकों में यह बताया गया है कि ब्रह्माण्ड की परम परिधि के भीतर नक्षत्रों और ग्रहों की कक्षायें किस क्रम से है। हमारी पृथ्वी का स्थान इन ब्रह्माण्ड के बिल्कुल मध्य में माना गया है अर्थात् यह भूगोल सारे ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है। यह बात अर्वाचीन ज्योतिष-सिद्धान्त के प्रतिकूल है। अर्वाचीन ज्योतिष में सूर्य जगत का केन्द्र माना जाता है। सूर्य के सबसे निकट बुध ग्रह की कक्षा है, फिर शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु और शनि की कक्षायें क्रमानुसार दूर होती गयी हैं।

ग्रहकक्षा का विचार दो प्रकार से किया जाता है – 1. भूकेन्द्रिक (प्राच्य) 2. सूर्यकेन्द्रिक (पाश्चात्य)

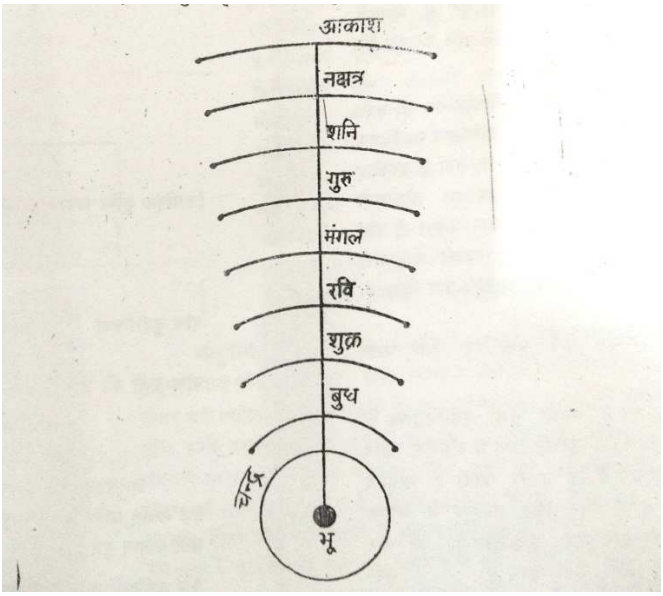

भारतीय ज्योतिष के अनुसार कक्षाओं का क्रम (पृथ्वी केन्द्र में)

चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी के चारों ओर है। नक्षत्रों की कक्षा अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि सब तारे समान दूरी पर नहीं है। आकाश कक्षा की सीमा भी स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि आजकल कुछ तारों की दूरी इतनी अधिक समझी जाती है कि आकाश कक्षा की सीमा उसके सामने नगण्य है।

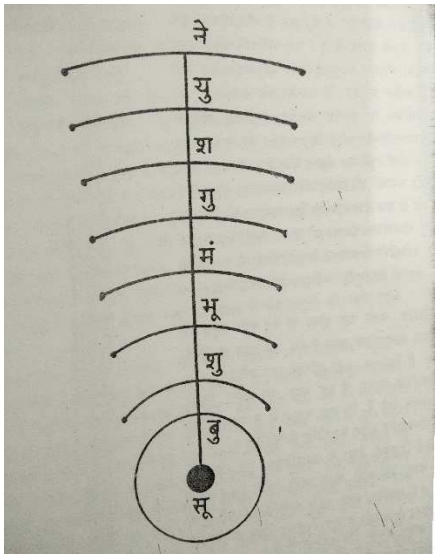

अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार ग्रह की कक्षाओं का क्रम (यहाँ सूर्य केन्द्र में)

इस चित्र में चन्द्रमा की कक्षा नहीं दिखलायी गयी है, क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है और पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य के भी चारों ओर जाता है।

ग्रह बोधक चक्र

प्राच्य मत में	**पाश्चात्य मत में**
सूर्य - ग्रह	सूर्य - तारा
चन्द्र – ग्रह	चन्द्रमा – उपग्रह
भौम – तारा ग्रह	भौम – ग्रह
बुध – तारा ग्रह	बुध- ग्रह
गुरु – तारा ग्रह	गुरु - ग्रह
शुक्र- तारा ग्रह	शुक्र- ग्रह
शनि – तारा ग्रह	शनि - ग्रह
राहु – पात ग्रह	पृथ्वी - ग्रह
केतु – पात ग्रह	यूरेनस - ग्रह
	नेपच्यून - ग्रह
	प्लूटो – ग्रह
	राहु, केतु – पात

भुव: स्थिति –

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राण: परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम।।

अर्थात् ब्रह्माण्ड के चारों ओर से मध्य भाग में यह भूगोल ब्रह्मा की धारणात्मिका परमशक्ति आकर्षण शक्ति से आकाश में अवस्थित है।

आचार्य वराहमिहिर के अनुसार ग्रहकक्षा क्रम –

चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवार्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगा:।।
तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।
नेभ्यां स्यान्महदेवं स्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्।।
पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलमध: स्थ:।
उर्ध्वस्थस्तुल्यजवो विचरति तथा न महदर्कसुत:।।

अर्थ है कि चन्द्रमा से उपर-उपर बुध, शुक्र, रवि, मंगल, गुरु तथा सूर्यपुत्र शनि की कक्षायें है तथा उसके आगे तारागण है। सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा मण्डल में पूर्व की ओर समान गति से भ्रमण करते हैं।

जिस प्रकार तैल निकालने के चक्र में चक्र की आरायें चक्रनाभी से आगे छितरी हुई होती जाती है तथा वे चक्र की नाभि के पास सघन होती है, उसी प्रकार (सभी ग्रहों की कक्षाओं में) राशियों के अन्तर उपर-उपर की कक्षाओं में अधिकाधिक होते जाते हैं। नक्षत्र मण्डल के नीचे चन्द्रमा छोटी कक्षा में स्थित होने के कारण सबसे शीघ्रता से भ्रमण करता है तथा शनि के उपर स्थित होने के कारण उसकी सबसे बड़ी कक्षा में होने से चन्द्रमा के तुल्य गति से चलता है लेकिन उस (चन्द्रमा) की जैसी शीघ्रता से वह नहीं चलता अर्थात् धीमी गति से चलता है।

गोल परिभाषा के अनुसार ग्रहकक्षा –

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खेऽस्थित:।
पृथुत्वात् समवद् भॉति चलोऽप्यचलवत् तथा।।
आवृत्तोऽयं क्रमाद् चन्द्रबुधशुक्रार्कभुभूवाम्।
गोलेजीवार्कीभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितै:।।

अर्थात् यह गोलाकार भूमिपिण्ड स्वशक्ति से निराधार आकाश में स्थित है, यह विशाल होने के कारण चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। -'वृत्तस्य नवतिर्भाग: दण्डवत् परिदृश्यते' नियमानुसार

यह अचल माना जाता है। उर्ध्व क्रम से भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु एवं शनि।

भास्कराचार्य के मतानुसार खकक्षा एवं ग्रहकक्षा –

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृदभुजंगेन्दुभि।
ज्योंतिश्शास्त्रविदो वदन्ति नभस: कक्षामिमां योजनै:।।
तद् ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं
केचिद् प्रोचुरदृश्य दृश्य कगिरिं पौराणिका: सूरय:।।
करतलकलितामलवदमलं सकलं विदनित ये गोलम्।
दिनकरकरनिकरिनहततमसो नभसोसपरिधियदितस्तै:।।

ज्योतिषशास्त्रानुसार आकाश की कक्षापरिधि का मान १८,७१२,०६९,२००,०००,००० योजन कहते है।

ग्रहस्य चक्रैर्विहता खकक्षाभवेत् स्वकक्षानिजकक्षिकायाम्।
ग्रह: खकक्षामितयोजनानि भ्रमत्यजस्रं परिवर्तमन:।।

खकक्षा को जिस-जिस ग्रह की भगण संख्या से विभक्त करेंगे भागफल उस-उस ग्रह की कक्षा का मान तुल्य होता है। सूर्यकक्षा ४३३१४९७ १/२, चन्द्रकक्षा ३२४००० तथा भकक्षा २५९८८९८५० प्रमाण गणकों ने की है।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में वृहस्पति की उत्पत्ति किससे हुई?

क. अग्नि से ख. पृथ्वी से ग. आकाश से घ. वायु से

2. प्राच्यमत में ग्रहकक्षा का विचार किस प्रकार होता है?

क. सूर्यकेन्द्रिक ख. भूकेन्द्रिक ग. भौमकेन्द्रिक घ. गुरुकेन्द्रिक

3. पाश्चात्य मतानुसार सूर्य है?

क. ग्रह ख. पात ग. तारा घ. उपग्रह

4. वृत्तस्य ..... दण्डवत् परिदृश्यते?

क. नवतिर्भाग: ख. पंचमो भाग: ग. सप्तमोभाग: घ. कोऽपि न

5. ज्योतिषशास्त्रानुसार आकाश की कक्षापरिधि का मान कितना है?

क. १८,१७,१२००००० योजन ख. १८,७१२,०६९,२००,०००,००० योजन

ग. १८७१००००० योजन घ. १८१२०६९००० योजन

6. सूर्य से निकटतम ग्रह कौन सा है?

क. बुध ख. शुक्र ग. पृथ्वी घ. मंगल

4.4 भचक्र व्यवस्था

'भ' का शाब्दिक अर्थ है – राशि, किन्तु इसके साथ-साथ नक्षत्रों के लिए भी 'भ' शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार भचक्र से तात्पर्य राशि एवं नक्षत्र दोनों से ही हो सकता है। भारतीय ज्योतिष में भचक्र का प्रथम बिन्दु अश्विनी नक्षत्र से लिया जाता है। इस प्रथम बिन्दु भचक्र को १२ भागों में बाँटा जाता है। प्रत्येक राशि का कोणीय मान ३०° है।

भूमण्डल के चतुर्दिक आकाश में पूर्वापर एक वृत्त की कल्पना करके, जिसके केन्द्र में पृथ्वी स्थित है, उसके केन्द्र पर चार समकोण बनाते हैं, जिनका मान ३६०° अंश होता है। इस वृत्त की परिधि को १२ समान भाग में विभक्त करने से प्रत्येक खण्ड ३६०/१२ = ३०° के होते हैं। इस 30 अंश के एक खण्ड को राशि, भवन या भ कहते हैं और उस वृत्त को भचक्र या भमण्डल कहते हैं।

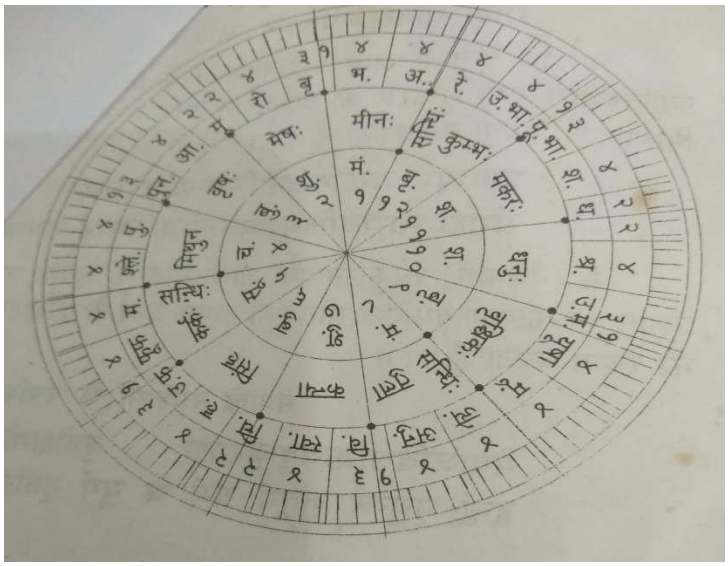

भचक्र या राशिचक्र

आप दिए गए क्षेत्र द्वारा भी भचक्र या राशिचक्र को समझ सकते हैं। इस भचक्र को पुन: सत्ताईस भागों में विभक्त किया गया। इस प्रकार ३६०°/ २७ = १३ अंश २० कला का एक नक्षत्र होता है।

पुन: एक नक्षत्र को चार भागों में विभक्त किया गया। नक्षत्र के इस चतुर्थांश को चरण या पाद कहते हैं। २७ नक्षत्रों अर्थात् पूरे भचक्र में १०८ नक्षत्रचरण होते हैं, जो १२ राशियों के तुल्य है।

आप ऐसे भी समझ सकते हैं –

१२ राशि = २७ नक्षत्र = १०८ नक्षत्रचरण

१ राशि = २७/१२ = २.२५ नक्षत्र = ९ चरण

अर्थात् १ राशि = २.२५ नक्षत्र = ९ नक्षत्रचरण

९ चरण = १ राशि = ३०°

अत: १ चरण = १/९ राशि = ३०/९ = ३ अंश २० कला = राशिनवमांश

नक्षत्रचरण को ही नवमांश कहते हैं।

भचक्र के एक निश्चित बिन्दु से मेषादि द्वादश राशियों और अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों की स्थिति होती है, जैसा कि क्षेत्र से स्पष्ट है। यह भचक्र पश्चिम से पूर्व दिशा में नित्य भ्रमणशील रहता है। इसी भचक्र को जिसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं, सूर्य अपनी पूर्वाभिमुख गति से नित्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है।

आंग्ल भाषा में मेषादि राशियों के पर्याय इस प्रकार हैं –

मेष	Aries
वृष	Taurus
मिथुन	Gemini
कर्क	Cancer
सिंह	Leo
कन्या	Virgo
तुला	Libra
वृश्चिक	Scorpio
धनु	Sagittarius
मकर	Capricorn
कुम्भ	Aquarius
मीन	Pisces

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अश्विनी, भरणी और कृत्तिका का एक चरण मिलकर मेष राशि का विस्तार होता है।

आचार्य ब्रह्मगुप्त जी ने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भी कहा है कि –

अन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमति भपंचरो ध्रुवो नमति।
लंकायामुडुचक्रं पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे।।

अर्थात् मेरु से अन्यत्र सभी दिशाओं में भचक्र की उन्नति होती है और उत्तर ध्रुव की नति होती है। लंका में भचक्र सममण्डलाकार है और दोनों ध्रुव लंका क्षितिज में है। द्रष्टा मेरू से जैसे-जैसे सभी दिशाओं में जाते हैं वैसे-वैसे ध्रुव की नति होती है। यह आचार्य का कथन हैं। परन्तु लंका को ही मूल स्थान मानकर भास्कराचार्य ने स्थिति का प्रतिपादन किया है, इसलिये 'निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ' इत्यादि भास्कराचार्योक्ति और ब्रह्मगुप्त में कोई भेद नहीं है। अर्थात् मेरू की ओर जाते हुए मनुष्य को उत्तर ध्रुव की उन्नति और भचक्र की नति देखने में आती है, एवं उत्तर भाग से निरक्ष देशाभिमुख जाते हुए मनुष्य को नति और उन्नति विपरीत देखने में आती हैं, अर्थात् उत्तर ध्रुव की नति और भचक्र की उन्नति देखने में आती है। 'उदग्दिशं याति यथा यथा नर:' इत्यादि भास्करोक्ति से स्फुट है। निरक्षदेश से उत्तर भी बहुत देशों में उत्तर ध्रुव का दर्शन नहीं होता है, इसलिए यहाँ सिद्धान्त कहने में भूपृष्ठजनित अवरोध को स्वीकार न कर भूगर्भ ही से सब कुछ विचार करना चाहिए।

शीघ्रगामी नक्षत्रों के साथ सदैव पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में समान परिमाण में हारकर पीछे रह जाते हैं, इसलिए वह पूर्व की ओर चलते हुए देख पड़ते हैं और कक्षाओं की परिधि के अनुसार उनकी दैनिक गति भी भिन्न देख पड़ती है, इसलिए नक्षत्र चक्र को भी यह भिन्न समय में अर्थात् २७ शीघ्र चलनेवाले थोड़े समय में और कम चलने वाले बहुत समय में पूरा करते हैं। रेवती के अन्त में पूरे होने वाले चक्र को 'भगण' कहते हैं।

रेवती नक्षत्र के अन्त से आरम्भ करके पूरब कओर बढ़ता हुआ जब ग्रह एक चक्कर लगाकर फिर वहीं रेवती के अन्त में आ जाता है तब वह एक भगण पूरा करता है। इसलिए भगण को चक्कर भी कहते हैं। राशि चक्र को बताते हुए सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि –

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते।
तत्त्रिंशता भवेद्राशि: भगणो द्वादशैव ते।।

६० विकलाओं की एक कला, ६० कलाओं का एक भाग या अंश, ३० भागों या अंशों की एक राशि तथा १२ राशियों का एक भगण होता है। यह सभी कोण नापने की इकाईयाँ हैं।

हम जानते है कि पूरे नक्षत्रचक्र (भचक्र) को एक भगण कहते है। यदि इस चक्र को १२ समान भागों में विभक्त किए जाये तो प्रत्येक भाग ३०° का होगा, जो एक राशि के बराबर होता है और उसे ही राशि कहते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि १२ राशियों का एक भगण होता है। राशि के तीसवें

भाग को अंश, अंश के साठवें भाग को कला तथा कला के साठवें भाग को विकला कहते हैं। इनमें से भगण और राशि का प्रयोग तो केवल उस आकाश स्थित चक्र के लिए होता है जिसके तल में सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है और अन्य ग्रह इधर उधर कुछ हटकर परिक्रमा करते हैं। परन्तु अंश, कला और विकला का प्रयोग अन्य कोणों के नापने में भी किया जाता है। कोण और समय नापने की इकाईयों में घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य जितने समय में एक भगण पूरा करता है वह एक वर्ष, जितने समय में एक राशि चलता है वह एक मास, जितने समय में एक अंश चलता है वह एक दिन, जितने समय में एक कला चलता है वह एक घड़ी और जितने समय में एक विकला चलता है वह पल के प्राय: समान होता है।

सूर्यसिद्धान्तोक्त नक्षत्र कक्षा, आकाश कक्षा तथा ग्रहगतियों का सम्बन्ध –

भवेद्भकक्षातिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टि ताडितम्।
सर्वोपरिष्टाद्भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डलम्।।
कल्पोक्त चन्द्रभगणा गुणिता: शशिकक्षया।
आकाशकक्षा सा ज्ञेया कर व्याप्तिस्तथा रवे:।।
सैव यत्कल्पभगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत्।
कुवासरैर्विभज्याह्न: सर्वेषां प्राग्गति: स्मृता।।
भुक्तियोजनजा संख्या सेन्दोर्भ्रमणं संगुणा।
स्वकक्षाप्तातु सा तस्य तित्याप्ता गति लिप्तिका:।।

अर्थात् सूर्य कक्षा के योजनों को ६० से गुणा करने पर नक्षत्र कक्षा के योजनों का मान आ जाता है। सभी ग्रहों से ऊपर नक्षत्र मण्डल इतने ही योजना में घूमता है। शशिकक्षा के योजनों को एक कल्प के चन्द्र भगणों की संख्या से गुणा करने पर आकाश कक्षा का मान ज्ञात होता है। सूर्य की किरणें वहीं तक जाती हैं। आकाश कक्षा के मान को जिस ग्रह के कल्प भगणों की संख्या से भाग दिया जायेगा उसी ग्रह की कक्षा का मान योजनों में ज्ञात होगा। आकाश कक्षा को कल्प के सावन दिनों के भाग देने पर सभी ग्रहों की दैनिकगति योजनों में आ जाती है। इस योजनात्मक ग्रहगति को चन्द्रकक्षा से गुणा करके जिस ग्रह की कक्षा से भाग देकर लब्धि को १५ से भाग देनें पर उस ग्रह की दैनिक गति कलाओं में प्राप्त होती है।

सूत्र –

1. नक्षत्र कक्षा = रवि कक्षा × ६०
2. आकाश कक्षा = कल्प के चन्द्र भगण × चन्द्र कक्षा

3. $\frac{\text{आकाशकक्षा}}{\text{कल्प में किसी ग्रहकी भगण संख्या}}$ = उस ग्रह की कक्षा

4. $\frac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्प के सावन दिन}}$ = प्रत्येक ग्रह की दैनिक योजनात्मक गति

5. $\frac{\text{ग्रह की योजनात्मक गति} \times \text{चन्द्र कक्षा}}{\text{ग्रहकक्षा} \times १५}$ = ग्रह की दैनिक कलात्मक गति

दूसरे और तीसरे सूत्र से स्पष्ट है कि आकाश कक्षा का विस्तार उतना माना गया है जितना प्रत्येक ग्रह एक कल्प में योजनों में चलता है। इससे यह सिद्ध है कि हमारे आचार्य प्रत्येक ग्रह की योजनात्मक गति समान समझते थे जो आजकल के वेधों से अशुद्ध है।

नक्षत्र कला और आकाश कक्षा के विस्तार कल्पित है। नक्षत्रों या तारों की दूरी की सीमा नहीं है। आजकल के वेधों से सिद्ध होता है कि कोई-कोई तारे पृथ्वी से इतनी दूर है कि उनके प्रकाश के पहुँचने में लाखों वर्ष लग जाते हैं।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ग्रह ज्योतिषशास्त्र का मूल है, जिसके बिना हम ज्योतिष शास्त्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर ही आधारित है। यहाँ तक की आचार्यों द्वारा ज्योतिष की स्थूल परिभाषा में 'ग्रहगणितं ज्योतिषम्' कहा गया है। सृष्ट्योत्पत्ति के समय ब्रह्मा जी ने जब ग्रह एवं नक्षत्रों का निर्माण किया था उस समय प्रमुख ग्रहों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में वर्णित है –

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ तत्स्त्वङ्गारकादय:।
तेजो भूरवाम्बुवातेभ्य: क्रमश: पंच जज्ञिरे।।

अर्थात् अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमा की उत्पत्ति के पश्चात् तेज अर्थात् अग्नि से मंगल, पृथ्वी से बुध, आकाश से वृहस्पति एवं शुक्र और वायु से शनि उत्पन्न हुए। इसी क्रम में नक्षत्रों एवं राशियों का भी निर्माण किया। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड में ग्रहों कों उनकी कक्षाओं में स्थापित किया। 'भ' का शाब्दिक अर्थ है – राशि, किन्तु इसके साथ-साथ नक्षत्रों के लिए भी 'भ' शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार भचक्र से तात्पर्य राशि एवं नक्षत्र दोनों से ही हो सकता है। भारतीय ज्योतिष में भचक्र का प्रथम बिन्दु अश्विनी नक्षत्र से लिया जाता है। इस प्रथम बिन्दु भचक्र को १२ भागों में बाँटा जाता है। प्रत्येक राशि का कोणीय मान ३०° है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

भूकेन्द्रिक - पृथ्वी को केन्द्र मानकर की गयी गणना।

धारणात्मिका – धारण करने वाली

ग्रहकक्षा – ग्रहों की कक्षा। जिस पथ पर ग्रह भ्रमण करते हैं, उसका नाम ग्रहकक्षा है।

अर्वाचीन – नवीन

प्राचीन – पुराना

उपग्रह - ग्रहस्य समीपं उपग्रहम्।

स्वशक्त्या – अपनी शक्ति से

निराधार – बिना आधार के

सकल – सम्पूर्ण

खकक्षा – आकाश कक्षा

भचक्र – राशिचक्र

आर्क्ष – नाक्षत्र

4.7 बोध प्रश्न के उत्तर

1. ग
2. ख
3. ग
4. क
5. ख
6. क

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रह से क्या समझते है?
2. ग्रहकक्षा का वर्णन कीजिये।
3. प्राच्य-पाश्चात्य मतानुसार ग्रहकक्षा का वर्णन कीजिये।
4. भचक्र व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।